ओ३म्

# दयानन्दसन्देश

## आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

**अगस्त २०१६**

Date of Printing = 05-08-16
प्रकाशन दिनांक= 05-08-16

वर्ष ४५ : अङ्क १०
दयानन्दाब्द : १९२
विक्रम-संवत् : श्रावण-भाद्रपद, २०७३
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११७

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

## इस अंक में


- जाग जाओ हे नेता २
- वेदोपदेश ३
- अष्टाध्यायी में अधिकार ४
- स्वतन्त्रता का महत्व ६
- हिंसा का शिक्षक....... ८
- चलो फिर से..... १०
- पाणिनी की अष्टाध्यायी...... १२
- ऋषि दयानन्दभक्त..... १६
- मोक्ष का स्वरूप १८
- योगेश्वर श्रीकृष्ण २०
- भूल-सुधार २०
- एक पत्र.... २३
- सत्यार्थ प्रकाश...... २४


**सत्यार्थप्रकाश**

प्रचार संस्करण – ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

# जाग जाओ हे नेता!

(पं० नन्दलाल निर्भय, भजनोपदेशक, आर्य सदन बहीन जनपद पलवल (हरियाणा)

नरेन्द्र मोदी जी करो, देश धर्म का ध्यान।
बनो शिवा, प्रताप तुम नेता, चतुर सुजान।।
नेता चतुर सुजान, वीर बलवान बनो तुम।
बिस्मिल, शेखर बनो, देश की शान बनो तुम।।
वैदिक पथ के पथिक ! जाग जाओ हे नेता।
पाओ तुम सम्मान, विश्व में वीर विजेता।।

दौड़ रहा है दौड़ में, यह सारा संसार।
आपा-धापी मच रही, हैं सब दुःखी अपार।।
हैं सब दुःखी अपार, देख लो हे बलधारी।
भोग रही है कष्ट, भयंकर दुनिया सारी।।
इस हालत में सुनो! जगत में वही बचेगा।
राम, कृष्ण की तरह, धर्म की डगर चलेगा।।

खतरनाक है विश्व में, अमरीका की चाल।
अमरीका है स्वार्थी, रखना इसका ख्याल।।
रखना इसका ख्याल, रहा है कर मन-मानी।
ठीक तरह लो जान, वीर! इसकी शैतानी।।
दुष्ट पाक की मदद, रात-दिन यह करता है।
चलता गन्दी चाल, न ईश्वर से डरता है।।

पापी पाकिस्तान का, मत करना विश्वास।
मत करना शैतान से, अच्छाई की आस।।
अच्छाई की आस, न करना हे तपधारी।
जान गई है इसे, आज यह दुनियां सारी।।
चाल बाज है चीन, हमारी भारी दुश्मन।
हत्यारा चांडाल, कुचाली जालिम कृपण।।

जो आजमाए शत्रु पर, करता है विश्वास।
धोखा खाता है वड़ा, महामूड़ वह खास।।
महामूड़ वह खास, अन्त में पछताता है।
सहता है अपमान, जहाँ भी वह जाता है।।

शेष पृष्ठ २६ पर

ओ३म्

**वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। — महर्षि दयानन्द**

**वेदोपदेश**— सब मनुष्य एक सर्वव्यापक ईश्वर के उपासक बनें और अपने जीवन को स्वस्थ रखने के लिए उसी से प्रार्थना करें।

दध्यङ् ङ्थर्वणः ऋषिः। बृहस्पति ईश्वर देवता। निचृत्पङ्क्तिः छन्दः। पंचमः स्वरः।। अथेश्वरप्राथनाविषयमाह्

अब ईश्वर प्रार्थना का उपदेश किया जाता है।

**ओ३म्— यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु।**
**शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः।।।।यजु० ३६/२।**

---

**पदार्थः**—(यत्) (मे) मम (छिद्रम्) न्यनत्वम् (चक्षुषा) नेत्रस्य (हृदयस्थ) (मनसः) अन्तःकरणस्य (वा) अतितृष्णम् अतिहिंसितं = व्याकुलवम् (बृहस्पतिः) बृहतामाकाशावीनां पालकं ईश्वरः (मे) मह्यम् (तत्) (दधातु) पुष्णातु (शम्) (नः) अस्मभ्यम् (भवतु) (भुवनस्य) भवन्ति भूतानि यस्मिस्तस्य (यः) (पतिः) पालकः स्वमीश्वरः।

**सपदार्थान्वयः**—(यत्) (मे) मम (चक्षुषा) नेत्रस्य (हृदयस्थ) छिद्रम्। न्यूनत्वं (मनसः) अन्तःकरणस्य (वातितृष्णम्) अतिहिंसितं = व्याकुलवम् अस्ति (तद्)(बृहस्पतिः) बृहतामाकाशावीनां पालकं ईश्वरः (मे) मह्यम् (दधातु) पुष्णातु (नः) (भुवनस्य) भवन्ति भूतानि यस्मिस्तस्य (पतिः) पालकः स्वमीश्वरः अस्ति, स (नः) अस्मभ्यम् (शम्) भवतु।

**भाषार्थः**—(यत्) जो (मे) मेरी (चक्षुषः) नेत्र की तथा (हृदयस्थ) हृदय की (छिद्रम्) न्यूनता (वा) अथवा (मनसः) अन्तःकरण की (अतितृष्णम्) अति व्याकुलता है, (तत्) उसे (बृहस्पतिः) महान आकाश आदि का पालक ईश्वर (मे) मेरे लिए (दधातु) पुष्ट करे और जो (भुवनस्य) संसार का (पतिः) पालक ईश्वर है, वह (नः) हमारे लिए (शम्) सुखदायक (भवतु) (भवतु) होवे।

भावार्थः—सर्व मनुष्यैः परमेश्वरस्योपासनया ज्ञापालनेन च हिंसा धर्म जितेन्द्रियत्वं सम्पादनीयम्।

**भावार्थः**—सब मनुष्य परमेश्वर की उपासना और आज्ञा पालन से अहिंसा धर्म को स्वीकार करके जितेन्द्रियता को प्राप्त करें।

अन्यत्र व्याख्यात्—हे सर्वसन्धयाय केश्वर! मेरे (चक्षु= नेत्र, हृदय = प्राणात्मा मन, बुद्धि, विज्ञान, विद्या और सब इन्द्रिय, इनके छिद्र निर्बलत्य राग, द्वेष, चाञ्वल्य यद्वा मन्दत्वादि विकार उनका निवारण (निर्मूल) करके सत्य धर्मादि में स्थापन आप ही करें। क्योंकि आप ही बृहस्पति = सबसे बड़े हो। सो अपनी बड़ाई की ओर देखकर इस बड़े काम को आप अवश्य करें। जिससे हम लोग आप की आहण के सेवन में यथार्थ तत्पर रहें। मेरे सब छिद्रों को आप ही ढाके।।

आप सब भुवनों के पति हैं। इसीलिए आपसे बारम्बर प्रार्थना हम लोग करते हैं कि सब दिन हम लोगों पर कृपादृष्टि से कल्याणकारक हों।

हे परमात्म्! आपके बिना हमारा कल्याणकार कोई नहीं है। हमको आप का ही भरोसा है, सो आप ही पूरा करें।

(आर्याभिविनय 2/39)

**("दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर" से उद्धृत,**
**व्याख्याता—स्व० श्री पं० आचार्य सुदर्शनदेव)**

# अष्टाध्यायी में अधिकार

(उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर, मो. ०९९८४५०५८३१०)

अष्टाध्यायी में सूत्रों का अधिकार उन सूत्रों के कार्यक्षेत्र को निर्धारित करते हैं, जिसके कारण उस सूत्र को बार-बार पढ़ना नहीं पड़ता और ग्रन्थ में लघुत्व आ जाता है। इन अधिकारों में कई स्थानों पर एक विचित्र बात देखने को आती है। एक अधिकार के समाप्त होने से पहले ही दूसरा अधिकार प्रारम्भ हो जाता है, जिसके कारण पहला अधिकार निरर्थक प्रायः हो जाता है। ऐसा माना गया है कि जिस प्रकार एक अधिकारी के स्थनान्तरित होने से पहले ही दूसरा अधिकारी अपना स्थान ले लेता है, इसी प्रकार पाणिनि ने किया है। परन्तु पहला अधिकार कई बार दूसरे अधिकार के बहुत दूर तक जाता है, केवल अगले सूत्र तक नहीं। इसमें पाणिनि का क्या अभिप्राय है, इसका थोड़ा उत्तर महाभाष्य में मिलता है। यह लेख उस उत्तर को आगे ले जा रहा है।

पहले हम अधिकार के दो उदाहरणों को देखते हैं जिससे संशय स्पष्ट हो जायेगा। "प्राग्घिताद्यत् (४/४/७५)" में 'हित' अर्थात् "तस्मै हितम् (५/१/५)" से पहले-पहले जो-जो अर्थ हैं, उन पर यत् का अधिकार स्थापित किया गया है। सो, "तत्र साधुः (५/१/५)" अर्थ में यत् प्रत्यय का योग होगा, जैसे - शरणे साधु इति शरण्यः देवः। अब, "प्राक् क्रीताच्छः (५/१/१)" पर, अर्थात् ५/१/४ जहां तक यत् का अधिकार था, उससे ४ सूत्र पहले ही छ प्रत्यय का अधिकार स्थापित किया जाता है, जो कि "तेन क्रीतम् (५/१/३६)" से पूर्व-पूर्व जाता है। इसलिए, ४/४/७५ का अधिकार वास्तव में ४/४/१४४ तक ही माना जाता है, ५/१/५ तक नहीं।

स्वयं छ का अधिकार ५/१३५ से पूर्व ही समाप्त हो जाता है! "प्राग्वतेष्ठञ् (५/१/१८)" से ठञ् का अधिकार प्रारम्भ हो जाता है, जो कि ५/१/११३ तक जाता है। इसका निष्कर्ष यह निकाला गया है, कि वस्तुतः छ का अधिकार ५/१/१७ तक ही है, ५/१/३५ तक नहीं, और उसके बाद ठञ् का हो जाता है।

तो क्या महाविद्वान् पाणिनि, जिन्होंने व्याकरण के सूक्ष्म नियमों को जानकर उनको गणितीय व्यवस्था में पिरोया, इतनी भ गणित नहीं कर पाए कि वे यत् का अधिकार ४/४/१४४ तक दें और छ का अधिकार ५/१/१७ तक? यह मानना तो बहुत कठिन है! अवश्य ही इस प्रकार का अधिकार देने में उनका कोई विशेष प्रयोजन होगा...

पहले-पहल इस विषय से सम्वद्ध प्रश्न महाभाष्य में "प्राग्दीव्यतोऽण् (४/१/८३)" पर उठाया गया पाया जाता है, जहा पूछा गया है कि, 'प्राक्' कहकर अधिकार करने से अच्छा, आचार्य पाणिनि अण् प्रत्यय की अनुवृत्ति ही दे देते। सो, उसका उत्तर निर्धारित किया गया कि 'प्राक्' के द्वारा स्थापित अधिकार अर्थ के लिए है, अण् प्रत्यय के लिए नहीं। इसलिए आगे जिन-जिन अर्थों में अन्य प्रकृतियों के साथ अन्य प्रत्यय कहे गए हैं, वहाँ-वहाँ अण् बाधित हो जात है। दिए गए तर्क के अनुसार, यदि अर्थानुसारी अधिकार नहीं होता, और प्रत्ययानुसारी अधिकार अथवा अनुवृत्ति होती, तो अपवाद विष्ज्ञय में अण् की भी उपस्थिति विकल्प से माननी पड़ती। फिर ५/१/१ पर पुनः यह विषय उठाया जाता है, परन्तु वहाँ पर भी कुछ भी नया नहीं कहा गया है- प्राक्-विषय अधिकार में अर्थ की प्रधानता को ही पुनः दोहराया है। अर्थ के ग्रहण से क्या विशेष प्रयोजन है, इस पर प्रकाश नहीं डाला गया है। इसीलिए आज भी हम उसका महत्त्व समझ नहीं पाए हैं, उल्टा प्रत्यय के आधार पर ही अधिकार का ग्रहण कर रहे हैं- क्योंकि ५/१/१ पर नया प्रत्यय आ गया, इसलिए हम कह रहे हैं कि यत् का अधिकार ५/१/४ पर न समाप्त होकर ४/४/१४४ पर ही समाप्त हो गया; क्योंकि ५/१/१८ पर एक नया प्रत्यय आ गया, इसलिए हम कह रहे हैं कि छ का अधिकार ५/१/३५ नहीं, अपितु ५/१/१७ पर ही समाप्त

हो रहा है। सो, सोच बदल कर अर्थानुसारी अधिकार ग्रहण करने का प्रयास करते हैं।

पहले देखते हैं यत्-प्रकरण। यह तो बहुत ही अद्भुत है! इसमें ५/१/१ में पाणिनि छ का अधिकार बैठाते हैं, और फिर अगले ही सूत्र में पुनः यत् को स्थापित कर देते हैं- उगवादिभ्यो यत् (५/१/२), जहां से यत् की अनुवृत्ति ५/१/४ तक ही मानी गई है, जहाँ तक ४/४/७५ का अधिकार जाना था! यही ज्ञापक है कि पाणिनि को अर्थानुसारी अधिकार इष्ट है, न कि प्रत्यय-सम्बन्धी, क्योंकि ऐसा नहीं होता तो वे या तो ५/१/२-४ सूत्र पिछले अध्याय में ही डाल देते, या फिर ५/१/१ का अधिकार ५/१/४ के बाद डालते। इससे वे यह ज्ञापित करा रहे हैं कि ५/१/२-४ सूत्र उनको प्राक्-क्रीतात् अर्थों और प्राक्-हितात् अर्थों में इष्ट हैं। इसका प्रयोजन निम्न प्रकार है।

"विभाषा हविरपूपादिभ्यः (५/१/४)" में हवि-विशेषों और अपूप आदि शब्दों से यत् होता है, और विकल्प से छ भी। क्योंकि इसके पूर्व कोई भी अर्थ-वाक्य नहीं दिया गया है, इसलिए यहाँ ५/१/५ से लेकर ५/१/१७ तक के अर्थों को लिया गया है। इससे "तस्मै हितम् (५/१/५)" अर्थों में अपूप आदि में पठित 'सूप' से बना- सूपाय हितम् सूप्यः सूपीयो वा। परन्तु ये सूत्र प्राक्-हितात अर्थों में भी है।! सो, "तत्र साधुः (४/४/९८)" अर्थ (सूपे साधुः) में भी 'सूप्य' और 'सूपीय' का प्रयोग होगा। इस प्रकार जो यत् ५/१/२-४ सूत्रों में पढ़ा गया है। वह प्राक्-हितात् अर्थ में भी है और प्राक्-क्रीतात् में भी।

५/१/४ में पढ़ा गया 'अपूप' गुडादिभ्यष्ठञ् (४/४/१०३)" में भी पढ़ा गया है, जो कि "तत्र साधु" के अन्तर्गत है। इससे संशय होता है कि क्या ५/१/४ का छ-युक्त 'अपूपीय' "तत्र साधुः" अर्थों में भी होगा कि नहीं? सो, ४/४/१०३ एक विशेष अर्थ "तत्र साधुः" से सम्बद्ध होने के कारण, इस अर्थ में तो 'आपूपिक' ही बनेगा, परन्तु अन्य अर्थों में, जैसे "भवे छन्दसि (४/४/११०)" अर्थ में 'अपूप्य' और 'अपूपीय' दोनों प्रयोग बनेंगे।

वस्तुतः, ५/१/२-४ में कोई नए अर्थ दिए ही नहीं गए हैं, केवल कुछ प्रकृतियों पर कुछ नियम दिए गए हैं। इन सूत्रों को ४/४/७५ के अधिकार में रखने का केवल यह ही प्रयोजन है कि इनमें बताए नियम दोनों प्राक-हितात् और प्राक्-क्रीतात् अर्थों में लगें।

"तस्मै हितम् (५/१/४)", जहाँ पर ५/१/२ से आई यत् की अनुवृत्ति समाप्त हुई, उससे अगले ही सूत्र में पुनः यत् प्रढ़ा गया है- "शरीरावयवाद्यत् (५/१/६)", जिसके कारण 'दन्तेभ्यो हितं दन्त्यम् औषधम्' बना। इस यत् की अनुवृत्ति ५/१/७ तक जाती है। अब पाणिनि ने ५/१/२ से यत् की अनुवृत्ति ५/१/७ तक ही क्यों न दे दी? तो, इसका उत्तर है कि "तस्मै हितम्" में वैसे तो छ प्रत्यय ही प्राप्त होगा, केवल ५/१/६-७ के अपवाद-विषयों में यत् प्राप्त होगा। इस यत् का प्राक्-हितात् अर्थों से काई सम्बन्ध न होने के कारण, प्राक्-हितात् यत् के अधिकार को बनाए रखने का कोई अर्थ नहीं बनता है। इसलिए ५/१/५ से नया प्रकरण आरम्भ हो गया। पुनः हम प्रत्यय की अपेक्षा अर्थ की प्रधानता को पाते हैं।

इसी प्रकार हम "प्राक् क्रीताच्छः (५/१/१)" को समझ सकते हैं, जिसका अधिकार "तेन क्रीतम् (५/१/३६)" से पूर्व तक जाता है, जबकि छ की अनुवृत्ति "प्राग्वतेष्ठञ् (५/१/१८)" पर ही समाप्त हो जाती है। यहाँ पर भी हम पाते हैं कि "प्राग्वतेष्ठञ् (५/१/१८)" के बाद अगले ही सूत्र में ५/१/६१ तक ठञ् का अपवाद ठक् कर दिया गया। फिर "तेन क्रतम् (५/१/३६)" तक केवल नियम ही नियम हैं, कोई अर्थ-वाक्य है ही नहीं। यह बिल्कुल वही स्थिति है, जो हमने पूर्व उदाहरण में देखी। और उसी के समान, ये सभी नियम दोनों प्राक्-क्रीतात् और प्राक्-वतेः अर्थों में लगेंगे। जैसे- "कंसाट्टिठन् (५/१/२५)" से "तस्मै हितम् (५/१/५)" अर्थ (कंसाय हितम्) में भी 'कंसिक' ही बनेगा, जिस प्रकार "तेन क्रीतम् (५/१/३६)" अर्थ (कंसेन क्रीतम्) में बनता है। यह प्रकरण "शाणाद्वा (५/१/३५)" तक चलेगा, जिसमें 'द्विशाण्यम्' आदि जो शब्द बनते हैं, वे प्राक्-क्रीतात् अर्थों में भी बनेंगे। जैसे- सूत्र "तदस्य तदस्मिन् स्यादिति

शेष पृष्ठ ६ पर

# स्वतन्त्रता का महत्त्व

(धर्मपाल आर्य)

बाल गंगाधर तिलक ने एक बार कहा था कि "स्वतन्त्रता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा।" तिलक जी के उपरोक्त कथन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आजादी किसी राष्ट्र व समाज के लिए कितनी महत्वपूर्ण है। स्वाधीनता ही राष्ट्र के वास्तविक अस्तित्व की पहचान है। यदि स्वाधीनता नहीं, तो राष्ट्र का भी कोई अस्तित्व नहीं है। राष्ट्र की ही क्यों हम सबके अस्तित्व की भी नींव स्वाधीनता पर ही टिकी हुई है। जब हमारे देश पर अंग्रेजों का शासन था, जब हमारे अस्तित्व की नींव (स्वतन्त्रता) गोरों के अधीन थी, उस समय हमारे आजादी के पुरोधा राष्ट्र को स्वाधीनता का वरदान दिलाने के लिए शान्ति (अहिंसा) और क्रान्ति के पथ पर अग्रसर थे। उन सपूतों के लिए आजादी साधना थी, उन सपूतों के लिए आजादी एक लक्ष्य था जिसे पाने के लिए वे कोई मोल चुकाने के लिए तैयार थे। स्वतन्त्रता संग्राम के विराट अश्वमेध यज्ञ में न जाने कितनी देवियों ने, कितने महापुरुषों ने, कितनी बेटियों ने, कितने बेटों ने, कितने युवाओं ने, कितनी युवतियों ने, कितने बच्चों ने, कितने वृद्धों ने, कितने कवियों ने, कितने लेखकों ने और न जाने कितने ही जाने-अनजाने देशभक्तों ने अपने आपको हवि (आहुति) बनाकर आहूत कर दिया। स्वतन्त्रता असंख्यों क्रान्तिकारियों के अमर बलिदान का परिणाम थी। आजादी के दीवाने बड़ी मस्ती से झूम-झूम कर गाते थे कि

इलाही वह भी दिन होगा जब अपना राज देखेंगे। जब अपनी ही जमीं होगी और अपना आसमाँ होगा। सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है। देखना है जोर कितना बाजू-ए कातिल में है। करता क्यों बगावत मैं यदि फाँसी का डर होता। चढ़ाता भेंट माता को यदि एक और सर होता।। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस का उद्घोष था कि "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा।" अपनी मातृभूमि को पराधीनता के बन्धन से मुक्त कराने के लिए क्रान्तिकारियों ने क्रान्ति का बिगुल बजा दिया। माताओं ने भी आशीर्वाद देते हुए कहा "यदर्थं क्षत्रिया सूते पुत्र! तस्य कालोऽयमागतः" अर्थात् हे पुत्र जिस दिन के लिए माता अपने पुत्र को जन्म देती है उसका अब उपयुक्त समय आ गया है। पुत्र ने कहा– "अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरंधनुः। उभयोरपि समर्थोऽस्मि शास्त्रादपि शरादपि। अर्थात् हे जननि- मेरे आगे वेदों का ज्ञान और पीछे शस्त्रों की विद्या है मैं अपने शत्रु का शास्त्रों और शस्त्रों दोनों ही विषयों में सामना कर सकता हूँ। महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी श्रद्धानन्द जी, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, चन्द्र शेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल, बटुकेश्वर दत्त, राजगुरु, सुखदेव, सरदार भगत सिंह, अशफाक उल्ला खाँ, ऊधम सिंह, भगवती चरण, लाला लाजपत राय, महारानी लक्ष्मी बाई, नाना साहिब, महात्मा गान्धी, सरदार बल्लभ भाई पटेल आदि असंख्यों ऐसे वीर थे, जिन पर आजादी की जबरदस्त धुन सवार थी। इन वीरों का सपना था कि हमारे बाद भावी पीढ़ी स्वाधीनता के वातावरण में जीवन यापन करेगी। हमारे बलिदान के परिणामस्वरूप स्वतन्त्र और अखण्ड राष्ट्र का निर्माण होगा। हमारे बाद हमारी प्राचीन संस्कृति सभ्यता फलेगी-फूलेगी। हमारे बाद अविद्या का, अन्याय का, अधर्म का और असत्यता का अन्धकार मिटकर विद्या का, न्याय का, धर्म का और सत्यता का प्रकाश फैलेगा। हमारे बाद असमानता की, शत्रुता की खाई मिटेगी और समानता की, मित्रता की स्थापना होगी। हमारे जाने के बाद हमारे देशवासियों के हृदयों से असहयोग की, भय और असुरक्षा की भावना मिट जायेगी और स्वतन्त्रता के सुख का अनुभव करते हुए सहयोग, निर्भयता और सुरक्षा की वातावरण बनेगा। हमारे बाद निराशा की काली रात समाप्त होगी और देशवासियों के जीवन में शुभाशा का सुप्रभात होगा। इसी स्वप्न के साकार होने की आशा में असंख्य क्रान्तिवीरों ने हँसते-हँसते जेल की अमानवीय यातनाएँ सहन की। असंख्यों क्रान्तिवीरों ने हँसते-हँसते आग में जलना स्वीकार किया। असंख्यों स्वतन्त्रता के देवदूतों ने गोरों (अंग्रेजों)

की गोली अपने सीने पर खाकर सहर्ष मौत को अपने गले का हार बना लिया। मेरी भारत माता के असंख्यों वीर सपूतां ने हँसते-हँसते फाँसी के फन्दे को चूम लिया। क्रान्तिकारियों के अमर बलिदान के परिणाम स्वरूप हमें आजादी की सौगात मिली। स्वतन्त्रता को सुखम् और परतन्त्रता को सबसे बड़ा दुःख माना गया है। कहा भी है– "सर्वं परवशं दुःखं, सर्वमात्मवशं सुख्। एतद्विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः" अर्थात् स्वतन्त्रता सबसे बड़ा सुख, पराधीनता सबसे बड़ा दुःख है। स्वतन्त्रता और परतन्त्रता ही सुख दुःख का संक्षिप्त लक्षण है। स्वतन्त्रता दिवस पूरे देश में हर्षोल्लास के साथ मनाया जा रहा है। यह दिवस हम देशवासियों के लिए प्रेरणा-दिवस है, आजादी को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए संकल्प लेने का दिवस है, जिनकी शहादत से हमें आजादी मिली है उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का दिवस है। १५ अगस्त, १९४७ के दिन बड़े लम्बे संघर्ष के बाद हमें स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। लगभग ७० वर्ष के आजादी के इस काल में हमने कितने राजनीतिक उथल-पुथल और कितने सामरिक उतार-चढ़ाव देखे हैं। सामरिक उतार-चढ़ावों से मेरा अभिप्राय पाकिस्तान और चीन के साथ अतीत में हुए युद्धों से है। चीन हमेशा कोई न कोई हमारे साथ कूटनीतिक खेल खेलता रहता है, चीन की गतिविधियां हमेशा संदेहास्पद रहती हैं। जहाँ तक पाकिस्तान का प्रश्न है, तो उसके विषय में मेरा स्पष्ट मानना है कि विभाजन के बाद उसके साथ युद्ध कभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष चलता ही रहता है, रहा प्रश्न राजनीतिक उथल-पुथल का तो हमारे देश की वर्तमान राजनीति बड़ी विडम्बनाओं से घिरी हुई है। प्रान्तवाद, जातिवाद, परिवारवाद, वंशवाद, भाषावाद तथाकथित धर्मनिरपेक्षतावाद और वोटबैंक इस देश की राजनीति की ऐसी विडम्बनाएं हैं, जिनसे राष्ट्र निर्माण की राजनीति, न्यायाधारित राजनीति, सत्यता की राजनीति, धर्माधारित राजनीति हाशिए पर चली गयी है। इसलिए मैं कहता हूँ कि राजनीति उथल-पुथल और सामरिक उतार-चढ़ाव हमारी आजादी के बहुत बड़े खतरे हैं। स्वतन्त्रता के इस पावन अवसर पर हम सब देशवासी यह प्रण करें कि राजनीतिक उथल-पुथल और सामरिक उतार-चढ़ाव की दल-दल से अपने देश को मुक्त कराकर बलिदानियों के अखण्ड भारत के सपने को साकार करें। वेद का आदेश है– "ध्रुवं ते इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयताम् ध्रुवम्" अर्थात् हे राजन्! आपके सलाहकार और सेनापति आपके राष्ट्र को उसी प्रकार ध्रुवता (स्थिरता) प्रदान करें यथा "ध्रुवाद्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत्। ध्रुवासः पर्वताः स्मे ध्रुवो राजा विशामयम्।" अर्थात् द्युलोक ध्रुव (स्थिर) है यह पृथिवी ध्रुव है, यह विश्व ध्रुव (स्थिर) है और अपनी सेना, अपने सलाहकार और अपने सेनापति के द्वारा ध्रुव (स्थिर और अखण्ड) राष्ट्र का धारण करें। १५ अगस्त हमारे लिए आत्मचिन्तन का दिन है। वर्तमान राजनीति जिस दौर से गुजर रही है, वो हमारे देश की आजादी और अखण्डता के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। जम्मू कश्मीर में जिस प्रकार अघोषित और छद्म युद्ध छिड़े हुए हैं वह हमारे देश की स्वतन्त्रता और हमारे देश की सम्प्रभुता पर सीधे-सीधे हमला है। परन्तु खेद है कि देश की विडम्बनाग्रस्त राजनीति पाकिस्तान के साथ उसी घिसे-पिटे शान्तिवार्ता के द्वारा विवाद सुलझाने का प्रयास कर रही है। यदि हम अपने बलिदानियों के प्रति, क्रान्तिकारियों के प्रति, अपने महापुरुषों के प्रति तथा स्वतन्त्रता संग्राम प्रणेताओं के प्रति अपनी सच्ची कृतज्ञता प्रकट करना चाहते हैं, तो उनके बलिदान से बलिदान की, उनकी देशभक्ति से देशभक्ति की, उनकी निडरता से निडरता की, उनके त्याग से त्याग की, उनके सर्वस्व समर्पण से सर्वस्व समर्पण की, उनकी रीति-नीति से रीति-नीति की और उनके देशप्रेम से हम सबको देशप्रेम की प्रेरणा लेनी चाहिए। हर पर्व को मनाने के पीछे कोई न कोई प्रेरणा, कोई न कोई सन्देश, कोई न कोई आदेश और कोई न कोई उपदेश छिपा होता है। १५ अगस्त का हम सबके लिए सन्देश, आदेश और उपदेश है कि हम सब एकता के सूत्र में बंधकर देश की एकता, अखण्डता को मजबूत करें क्योंकि- "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः अर्थात् भूमि मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ। माता की रक्षा पुत्र का दायित्व है। मातृभूमि की स्वतन्त्रता व अखण्डता को हम सब मिलकर सुदृढ़ करें।

□□

# हिंसा का शिक्षक शांतिदूत कैसे?

(राजीव चौधरी)

कश्मीरी अलगाववादी नेता, विपक्ष चाहे जो भी हो हमेशा कश्मीर में शांति की बात करते हैं। पर अपने भाषणों में जहरीले बोल बोलते हैं। जिस कारण इनके बच्चे तो विदेशों में ऐशो आराम से पल जाते हों पर इनके उगले जहर के बोल से हर साल ना जाने कितने लोग अपने प्राण गंवाते रहते हैं। सेना द्वारा बुरहान वानी को मार गिराए जाने के बाद जिस तरह जम्मू कश्मीर के पूर्व मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला ने ट्वीट किये वो भी यह दर्शाते हैं कि इस कट्टर सोच को भुनाने के लिए राजनैतिक दल किस तरह आमादा है। उमर अब्दुल्ला ने बुरहान वानी की मौत पर ट्वीट किया है कि बन्दूक उठाने वालों में बुरहान वानी न पहला कश्मीरी नौजवान है और न अंतिम। इससे पता चलता है कि आतंकवाद नीचे से ऊपर की ओर नहीं पनपता बल्कि ऊपर से नीचे नौजवानों के हाथ में थमाया जाता है। चाहे इसमें पाकिस्तान के हाफिज सईद मसूद अजहर का नाम आता हो या अपने जहरी भाषण के लिए हाल ही में उभर कर आये जाकिर नायक का नाम ही क्यों ना हो। ढाका में हमले करने वाले आतंकी जाकिर नायक के भाषणों से प्रेरित पाए गये। हालांकि विश्व के कई देशों में जाकिर को प्रतिबंधित किया गया है या हो सकता है जैसे कुशल किसान अपनी फसलों को कीटों से बचाते हैं उसी तरह ये देश अपनी नस्लों को बचा रहे हों?

अभी थोड़ी देर पहले कहीं पढ़ा था कि जून माह के अंत में पश्चिम बंगाल में किसी स्कूल में कुछ मुसलमान छात्रों ने अचानक दोपहर को अपनी कक्षाएँ छोड़कर स्कूल के लॉन में एकत्रित होकर नमाज पढ़ना शुरू कर दिया था, जबकि उधर हिन्दू छात्रों की कक्षाएँ चल रही थीं, चूँकि उस समय यह अचानक हुआ और नमाजियों की संख्या कम थी इसलिए स्कूल प्रशासन ने इसे यह सोचकर नजरंदाज कर दिया कि रमजान माह चल रहा है, तो अपवादस्वरूप ऐसा हुआ होगा, लेकिन नहीं अगले दिन पुनः मुस्लिम छात्रों का हुजूम उमड़ पड़ा, प्रंसिपल के दफ्तर के सामने एकत्रित होकर "नारा-ए-तकबीर, अल्ला-हो-अकबर" के नारे लगाए जाने लगे, कुछ छात्र प्रिंसिपल के कमरे में घुसे और उन्होंने माँग की, कि उन्हें जल्दी से जल्दी स्कूल परिसर के अंदर पूरे वर्ष्ज भर नमाज पढ़ने के लिए एक विशेष कमरा आवंटित किया जाए, इन्हीं में से कुछ छात्रों की माँग थी कि प्रातःकालीन सरस्वती पूजा पर भी रोक लगाई जाए। आखिर कहाँ से पनपी यह सोच क्यों अपनी पूजा पद्धति को ही महान मान लिया? किसने सिखाया इन बच्चों को कि दूसरों की संस्कृति, पूजा और उपासना हमारे लिए कोई मायने नहीं रखती?

यही सोच लेकर एक बच्चा जब बड़ा होता है, फिर वो इस्लामिक परिधान की माँग करता वो मुसलमान बनना बाद में चाहता है पहले वो मुसलमान दिखना चाहता है। फिर वो जाकिर नायक जैसे लोगों की कट्टर हिंसक सोच से प्रभावित होकर कब मरने-मारने निकलकर बुरहान वानी बन जाता है। कब एक के दो और फिर दो के सौ हो जाते हैं, पता ही नहीं चलता। पता तव चलता है जब एक हँसता खेलता मुल्क सीरिया, यमन, मिस्र, ट्यूनिशिया या पाकिस्तान, अफगानिस्तान इराक बन जाता है। सोचिये जब एक बच्चा जाकिर नायक जैसे पढ़े-लिखे मुस्लिम के यह बयान सुनता है कि यदि ओसामा विन लादेन दुश्मनों के साथ लड़ रहा है, तो मैं उसके साथ हूँ, इस्लाम उसके साथ है, हर मुसलमान को आतंकी होना चाहिए यदि वो आतंकी अमेरिका को डरा रहा है, तो समझो वो इस्लाम को फॉलो कर रहा है। पाकिस्तानी मूल के लेखक विचारक पत्रकार तारेक फतेह कहते हैं कि आज मदरसों में सिर्फ बच्चों के दिमाग में एक बात डालते हैं कि सारी दुनिया हिन्दू, सिख, इसाई, बौद्ध यहूदी हमारे खिलाफ साजिश रच रहे हैं। हमें बचाने वाला सऊदी अरब और मदरसे हैं। इस्लाम के दुश्मनों के खिलाफ लड़ते हुए जान देना

शहादत है, तो सोचिये ऐसी तकरीरें सुनने वाला बच्चा क्या बनेगा?

सोचकर देखिये यदि किसी बच्चे का निर्माण प्रेम, शांति और अहिंसा की छाँव की बजाय घृणा, हिंसा और कट्टरता में होगा, तो वो बच्चा समाज को क्या देगा? आतंक या सामाजिक समरसता? तसलीमा नसरीन ने मुस्लिम माता-पिता को आगाह करते हुए लिखा था कि यदि आपका बच्चा हद से ज्यादा कुरान, इस्लामिक परिधान के करीब जा रहा है, तो कृपया उसका ध्यान रखें कही उसका झुकाव आतंक की ओर तो नहीं हो रहा है। समाचार चैनलों के अनुसार करीब १२ अरब रुपये प्रति माह जाकिर नायक को विदेशों से इस्लाम के नाम पर फंड मिलता है। क्या कोई इस्लाम से जुड़ा व्यक्ति बता सकता है कि कितना पैसा गरीब मुस्लिम के विकास के लिए उसकी शिक्षा के लिए खर्च किया जा रहा है? या फिर उस पैसे से इन्टरनेट और टेलीविजन व अन्य माध्यम से उनके दिमाग में सिर्फ हिंसा के बीज रौंपे जा रहे हैं? जाकिर जैसे लोग धर्म विशेष की महिमा अपनी प्राचीन सभ्यता का अपने मौलानाओं का गुणगान कुछ इस तरह करते हैं कि ना चाहते हुए भी कई बार कुछ युवा इस्लामिक प्राचीनता से इतना अधिक प्यार करता है, कि उसके लिए आत्महत्या तक कर लेता है। वह फिदायीन तक बन जाता है। वह प्राचीन समय के कत्लेआम को भी स्वर्णयुग समझकर उसे वापिस लाना चाहता है, उसके लिए हर चीज की हत्या कर देता है। उसकी अमानवीयता बढ़ती जाती है। तो व्यक्ति आत्मघात करता है। धार्मिक उन्माद यह शिक्षा देता है कि यदि जीत गये तो गाजी कहलाओं और यदि मारे गये तो शहीद। स्वर्ग में तुम्हें हूरें मिलेंगी। इस हत्याकांड को कट्टरवाद, जिहाद और धर्मयुद्ध का नाम देता है। दूसरे संप्रदायों को हेय समझना, उनसे घृणा करना, अपनी श्रेष्ठता को मनवाने को कोशिश करना सारे फसादों की जड़ है। अन्य किसी के मुकाबले इस्लाम का पूरा इतिहास ऐसे ही नरसंहारों से भरा पड़ा है। आज कुछ लोग जाकिर नायक को धर्मगुरु कह रहे हैं इतिहास उठाकर देखिये। सच्चे और महान संत का जीवन हमेशा निर्मल रहा है। धर्मगुरु कभी किसी फौज का कमांडर या किसी गिरोह से जुड़ा आतंकवादी नहीं होता। वह अकेला होता है, फिर भी सबके साथ होता है। उसका सन्देश सबका कल्याण होता है। अब भारत सरकार को इस मामले में जाँच कर कड़ी कार्रवाही करनी चाहिए। मुस्लिम समुदाय को भी धर्म के नाम पर जहर बेच रहे इस इन्सान से अपने बच्चों को सचेत करना चाहिए और मीडिया को भी सरकारी तंत्र में हस्तक्षेप करने के बजाय सोचना चाहिए कि जब कुछ तथाकथित हिन्दू संतों को जेल हो सकती है, तो जाकिर नायक को क्यों नहीं?

❑❑

---

पृष्ठ ५ का शेष

(५/१/१६)" में 'द्वौ शाणौ अस्य अस्मिन् वा सदिति द्विशाण्यं, द्विशाणम् वा' बनेगा। अगले सूत्र - "तेन क्रीतम् (५/१/३६)" - से अर्थ-वाक्य प्रारम्भ हो गया, और उसके अन्तर्गत दिए नियम केवल उस अर्थ में लगेंगे, इसलिए उसके आगे प्राक्-क्रीतात् अर्थों को ले जाना व्यर्थ हो जाता है।

इस प्रकार दो अधिकारों के बीच में आने वाले सूत्र नियमार्थक हैं और वे दोनों पक्षों के अर्थों में यथासम्भव लगेंगे।

पाणिनि के सूत्रों की रचना अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण है, इसमें हमें संशय नहीं करना चाहिए। चाहे वार्तिक और महाभाष्य में हमें कुछ रहस्यों के उत्तर न मिलें, या संकेतमात्र मिलें, हमें श्रम करके इन सूत्रों को समझना ही पड़ेगा। वार्तिक और महाभाष्य में सभी उत्तर उपलब्ध हों, यह किसी भी प्रकार से नहीं कहा जा सकता। बहुत सारे स्थान अभी भी ऐसे हैं, जहाँ संशय बने हुए हैं। इनके चलते, हम शब्दों के प्रयोगों को पूर्णतया समझ नहीं पायेंगे। इसलिए उत्तर खोजने ही होंगे... वैयाकरण मेरे लेख पर अवश्य अपनी टिप्पणी देने की कृपा करें।

❑❑

# चलो फिर से लाशें गिनते हैं!!

(हेमराज शास्त्री)

आज पूरी दुनिया में आतंक के धर्म को लेकर एक बड़ी बहस मुखर है कि आतंक किस पंथ की देन है? हालांकि मजहब विशेष की आड़ में हमलावर आतंकी हर बार हमले के बाद नैतिक तौर पर जिम्मेदारी लेते हैं। किन्तु उदारवादी मुस्लिम जगत इसे नकार देता है। यदि एक पल को मान भी लिया जाये कि चलो इन्होंने जिम्मेदारी ले भी ली तो क्या हो जायेगा? क्या हिंसा से भरी खोपड़ियाँ अपना हिंसक खेल खेलना बंद कर देंगी? हिंसक मनोवृत्ति के लोग तब भी हिंसा का खेल जारी रखेंगे। आतंक के स्थान और उनको अंजाम देने के तरीके बदलते रहेंगे। आरलैंडो में गोली मारकर हत्या ढाका में गर्दन रेतकर तो अब फ्रांस के एक शहर नीस में ८० से ज्यादा लोगों की ट्रक द्वारा रोंदकर हत्या कर दी गयी, जिसकी जिम्मेदारी इस्लामिक स्टेट के आतंकियों ने ली है। अपना देश सबको प्यारा होता है। मुझे भी है, फ्रांसिसियों को भी होगा लेकिन भारत में रहते हुए भी मैं सोच सकता हूँ कि फ्रांस के लिए यह कितना दुःखद दिन होगा, मृतकों के परिजनों की गीली पलकें, दुःख में फड़कते होंठ खुद से प्रश्न कर रहे होंगे कि आखिर हमने हत्यारों का क्या बिगाड़ा था? मैं यहा से सोच सकता हूँ कि फ्रांस के लोग दुःख के इस माहोल में भी समझदारी से काम लेंगे। तुर्की, बगदाद, काबुल, ढाका में हुए हमले के बाद एक बार फिर विश्व समुदाय के लिए यह यह घटना निंदा से भरी रहेगी। हो सकता है मोबाइल में ट्वीट पहले से सेव हो बस ट्वीट करने से पहले देश का नाम बदला हो। मीडिया को न्यूज मिल गयी, लेखकों को टॉपिक किन्तु मरने वाले को क्या मिला? अब एक बार फिर विश्व समुदाय आतंक से लड़ने के लिए एकजुट होने का ढोंग रचता दिखाई देगा। आतंक से साथ मिलकर लड़ने के बयान सुनाई देंगे। किन्तु सवाल यह है कि लड़ाई किससे होगी और कहाँ होगी? एक आतंकवादी संगठन का ढांचा गिरता है तो दूसरा खड़ा हो जाता है। आतंक के संगठनों के नाम बदलते रहते हैं, कृत्य समान ही रहते हैं। आखिर कब तक एक हत्यारी सोच से बारूद की लड़ाई होगी?

आतंक के मजहब को लेकर बहस बेकार और आधारहीन है, इसे साबित कर कुछ सिद्ध नहीं होगा। आतंकवाद का कोई एक निश्चित ठिकाना नहीं है वो हर बार किसी भी एक नाम से निकलकर आता और मासूमों को मार देता है। इसे एक हिंसक सोच का उदार सोच पर प्रहार भी कह सकते हैं। अब समय आ गया है कि ऐसी हिंसक सोच के वो अड्डे तलाशने होंगे, जहाँ से ये निकलकर आता है। और जहाँ ये फिर से छिप जाता है। आखिर क्यों बार-बार एक ही मत के लोग अमानवीय कृत्य करते हैं और उस मत के ठेकेदार हमेशा (अधिक से अधिक) उसकी निन्दा? आलोचना कर बस पल्ला झाड़ लेते हैं। एक जाकिर नायक को गिरफ्तार करने, सैन्य-असैन्य कारवाही कर मुल्ला मंसूर या लादेन को मारने से क्या सोच मर जाएगी? यदि कोई हाँ कहे तो उसे अतीत के पन्नों में झांककर देख लेना होगा कि कहीं मत की आड़ में हिंसा का खेल पुराना तो नहीं। पुराना है तो क्यों है? मेरा मानना है अभी विश्व समुदाय के मन में आतंक के लिए उतनी नफरत नहीं पनपी, जितनी आतंकवादी के

मन में मासूम लोगों की बेदर्दी से हत्या के लिए पनप रही है। क्योंकि अभी दस लाख के इनामी आतंकी बुरहान वानी के मामले में मैंने देखा कि भारत के अन्दर ही किस तरह एक आतंकी को अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर समर्थन मिल रहा है। वामपंथी नेता कविता कृष्णन ने बुरहान वानी के एनकाउंटर पर सवाल ही नहीं उठाए बल्कि बुरहान की मौत को देश के लिए शर्मनाक बताया। यहाँ से शुरू होता है एक खेल। जहाँ आतंक के प्रति संवेदना है वहीं पर उसके लिए प्रेरणा भी छिपी होती है। वरना मान लीजिये किसी का दृष्टिकोण मानवीय है और वो किसी की भी हत्या को गलत मान रहा है, तो उसकी नजरों में सैनिक और आतंकी में भेदभाव क्यों? शायद ही मैंने कविता कृष्णन का कभी कोई ऐसा विचार सुना हो, जिसमें उन्होंने आतंकवादियों द्वारा किये गये किसी हमले को शर्मनाक बताया हो? या आतंकी हमले में शहीद हुए किसी जवान के प्रति संवेदना या शोक व्यक्त किया हो।

कई बार लगता है कि एक तो आतंक को कहीं ना कहीं राजनैतिक संरक्षण प्राप्त होता है और दूसरा मीडिया की भी अंतर्राष्ट्रीय आतंक में भूमिका संदिग्ध नजर आती है, जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। चाहे उसमें माध्यम इलेक्ट्रॉनिक मीडिया हो या प्रिन्ट मीडिया। सोशल मीडिया की तो बात छोड़ दीजिये यहाँ तो हर किसी का अपना स्टैंड है। स्वतंत्र मडिया लोकतंत्र के लिए अनिवार्य है किन्तु जब पूरा विश्व आतंकवाद से त्रस्त हो, उस समय किसी आतंकवादी को इस प्रकार नायक बनाना या अपनी प्रेरणा का उद्गम मान लेना अपने विनाश को न्यौता देना है। यह एक खतरनाक शुरूआत है माना कि आप सरकार के किसी कार्य से सहमत नहीं या यह कहो इतना बड़ा देश है इतनी विविधता है, तो स्वाभाविक रूप से असहमति भी होगी किन्तु क्या इसका हल किसी को मकबूल भट्ट, अफजल या बुरहान बना दे? सब जानते हैं कि जब पत्रकारिता बाजार में है, तो बिकाऊ जरूर होगी। चाहे उसका रुझान सत्ता पक्ष हो या विपक्ष। आज पत्रकारिता आदर्शों में बंधी नहीं रही। जगह-जगह पत्रकारिता के नाम पर कभी अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर बुद्धिखोर लोगों का जमघट है। हर एक आतंकी घटना के पहले दिन मीडिया एक सुर बोलती दिखाई देगी, पर दो दिन बाद सबके मत विभाजित हो जाते हैं। कभी आतंकी की माँ को दिखाकर तो कभी उसके परिवार को दिखाकर न्यूज रूम से मातमी धुन चलाई जाती है। कई बार तो सेना के शहीद जवानों पर २ मिनट में खट्टी डकारें लेने वाले संवाददाता पूरा दिन आतंकी के परिवारों के गुजर बसर पर चिंतित दिखाई देते हैं। ये किसी एक देश की कहानी नहीं है बल्कि हर दूसरे देश में यही हाल है। कुछ दिन पहले एक अमेरिकी ब्लॉगर पामेला जेलर ने कहा था आज अमेरिकी जमीन खून से सनी है किन्तु यहाँ के वामपंथी उसे ढकने की कोशिश कर रहे हैं। ठीक यही हाल भारत के अन्दर दिखाई दे रहा है। दिन पर दिन आतंकी सोच और समर्थन मजबूत होता जा रहा है। राष्ट्र के प्रमुख बदल जाते है वैश्विक मंचों पर आतंक पर प्रहार करने की कसमें खाई जाती हैं। नतीजा फिर एक आतंकी घटना फिर चीखते घायल रोते-बिलखते परिवारजन आज फ्रांस में हो गया कल कहीं और होगा अगले दिनों हम अपने काम में लगे होंगे सभी राष्ट्रों के प्रमुख अपनी सरकारें बचा रहे होंगे लेकिन प्रश्न यह है कि मासूम लोगों के खून से हर रोज अपने हाथ रंगने वाली इस सोच को खत्म कैसे किया जा सकता है इसका दमन कर या इसका समर्थन कर?

❏❏

# पाणिनी की अष्टाध्यायी और कम्प्यूटर विज्ञान

(वेदमार्तण्ड महावीर मीमांसक, मो. ६८११६६०६४०)

२०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विश्व के सभी विश्वविद्यालयों में 'भाषाविज्ञान' नामक एक नये विषय का विशेष रूप से अध्ययन-अध्यापन प्रारम्भ हुवा, जो प्राचीन भारतीय भाषा-शास्त्रों के लिये नया नहीं है। आधुनिक भाषाविज्ञान के आविष्कारक एक जर्मन विद्वान्, फ्रैञ्च बॉप थे। फ्रैञ्च बॉप स्वयं लिखते हैं कि आधुनिक भाषाविज्ञान के सिद्धान्त उन्होंने पाणिनी की अष्टाध्यायी से लिये हैं, जिन का समय कम से कम ३५०० वर्ष पहले का है। भाषा शास्त्र के महान आधुनिक विद्वान् ब्लूग फील्ड ने पनी पुस्तक 'लैङ्ग्वेज' (अंग्रेजी) में आचार्य पाणिनि की महती कृति अष्टाध्यायी को पढ़ कर पाणिनि को "यूनिवर्सल मोन्यूमैन्ट ऑफ ह्यूमन इन्टिलैक्ट"- मानवीय मस्तिष्क का आदर्श विश्वस्तरीय नमूना कहा है। आधुनिक प्रसङ्ग में पाणिनि के भाषिक सिद्धान्तों की खोज हमने की और पाणिनि की अष्टाध्यायी का वास्तविक स्वरूप खोजा। पाणिनि के सिद्धान्तों की खोज को हमने अपनी पुस्तक "समर्थ-थयोरी ऑफ पाणिनि एण्ड सैञ्टेन्स-डेरीवेशन" (अंग्रेजी) में प्रकाशित किया। अपनी दूसरी पुस्तक "पाणिनि ऐज़ ग्रेमेरियन" (अंग्रेजी) में भी पाणिनि के कुछ तकनीकी सिद्धान्त हम पहले ही लिख चुके थे। विश्व भर से पाणिनि के आधुनिक विद्वानों के प्रशंसा पत्र हमें मिले। फिलेडैल्फिया विश्वविद्यालय (अमेरिका) के प्रोफेसर जार्ज कारडोना ने अपनी पुस्तक "माडर्न रिसर्च आन पाणिनि" में हमारी पुस्तक की प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा। पैरिस (फ्रांस) के विश्वविद्यालय में तो हमारे द्वारा दर्शाये गये पाणिनि के भाषिक सिद्धान्तों की दिशा में आगे खोज भी प्रारम्भ हुई। जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली (भारत) के 'स्कूल ऑफ कम्पयूटर साईन्स' के दो शोध छात्रों ने हमारी पुस्तक के आधार पर पाणिनि पर शोधकार्य प्रारम्भ किया। खैर! यह बात तो बहुत लम्बी है। प्रकृतमनुसरामः। यहाँ मैं विषय का केवल सांकेतिक वर्णन ही कर पाऊंगा।

आज विज्ञान के क्षेत्र में प्रतिदिन नयी-नयी खोजें हो रही हैं। प्रत्येक देश के वैज्ञानिक अपनी-अपनी नई खोजों को अपने-अपने देश की भाषा में छाप कर विश्व के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। अतः दूसरे देश के वैज्ञानिक जो उनके देश की भाषा को नहीं जानते, उनके लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वे पहले उनकी प्रकाशित खोज को अपनी भाषा में अनुवाद करवायें और फिर उसे पढ़कर अपनी अगली खोज करें, जैसे रूसी भाषा में प्रकाशित खोज को ग्रीक, लैटिन, जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका, इङ्गलैण्ड आदि देशों के वैज्ञानिक अपनी-अपनी भाषा में अनुवाद करके पढ़ें, क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि सभी देशों के वैज्ञानिक अपने से भिन्न देश की भाषा के भी विद्वान् या जानने वाले हों। अतः प्रत्येक देश की भाषा में लिखी हुई खोज का अन्य देश की भाषाओं में अनुवाद अनिवार्य हो जाता है और यह काम दीर्घकाल साध्य है, तब तक तो खोज और आगे बढ़ जाती है, या भिन्न'भिन्न देशों में उसी खोज की आवृत्ति होती रहती है जिससे प्रगति में अत्यधिक बाध ा पड़ती है। अतः अनुवाद के इस कार्य के लिए ऐसा यान्त्रिक उपकरण चाहिए, जो भिन्न-भिन्न भाषाओं में लिखी जाने वाली खोजों को तत्काल भिन्न-भिन्न देश की भाषाओं में अनुवाद करता जाये ताकि विज्ञान के उस क्षेत्र में काम या खोज करने वाले वैज्ञानिक तत्काल उसे पढ़कर उससे आगे अपनी खोज करें। इस अन्तर्राष्ट्रीय

समस्या के समाधान के लिये जर्मन विद्वान् जे.एफ स्टाल ने पुस्तक लिखी थी "वर्ड-आर्डर इन संस्कृत एण्ड यूनिवर्सल ग्रामर" (अंग्रेजी), जिस में उन्होंने इस समस्या के समाधान का संकेत संस्कृत भाषा के प्राचीन व्याकरण शास्त्रों से दिया था। पश्चिम के वैज्ञानिकों का ध्यान इसके बाद पाणिनीय व्याकरण पर टिका, और कम्प्यूटर पर इस के प्रतिदिन अनुसन्धान और परीक्षण होने लगे। इसी समस्या के समाधान के लिये हैदराबाद (भारत) स्थित आई.आई.टी. (कम्प्यूटर पर खोज करने वाली संस्था) नामक संस्था ने पाणिनि के अष्टाध्यायी के भाषिक सिद्धान्तों के अनुसार कम्प्यूटर का एक "अनुसारक" नामक प्रोजेक्ट तैयार किया। पाणिनि की अष्टाध्यायी का सर्वाङ्गीण ज्ञान न होने के कारण उनको इस प्रोजेक्ट में बाधा आई। इस दिशा में मेरे (लेखक) द्वारा लिखी गई पाणिनि के भाषिक सिद्धान्त सम्बन्धी दो पुस्तकें उन को मिल गईं। इसके लिये उन्होंने मुझे उपयुक्त व्यक्ति समझकर गत फरवरी-मार्च मास (सन् २००६) में अपनी संस्था में निमन्त्रित किया और मेरे समक्ष अपनी समस्यायें रखीं। गुरु विरजानन्द और ऋषि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट पाणिनि व्याकरण का आर्ष (मौलिक) परम्परा-पद्धति से सर्वाङ्गीण अध्ययन करने और उसी महान् सागर में जीवन भर बार-बार गोते लगाते रहने के कारण मैंने पाणिनि की अष्टाध्यायी के अनुसार उनका मार्ग निर्देशन किया। मेरे आवास, भोजन आदि का उच्चकोटि का प्रबन्ध उन्होंने किया, यात्रा भी वायुयान द्वारा नियोजित की। कम्प्यूटर में आयी हुई अनेक तत्कालीन बाधाओं का हमने वहाँ रहकर समाधान किया। अभी भी समय-समय पर मुझ से सम्पर्क कर के वे सामयिक समस्याओं का समाधान पाणिनि के भाषिक सिद्धान्तों के अनुसार पूछते रहते हैं। उनका काम सही दिशा में प्रगति पर आगे बढ़ रहा है। हैदराबाद के केन्द्रीय विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में भी अनेक शोध-छात्र पाणिनि के भिन्न-भिन्न भाषिक पक्षों को लेकर प्रो० अम्बा कुलकर्णी के मार्ग-निर्देशन में 'हमारी पुस्तकों के आधार पर पाणिनि के कम्प्यूटरीकरण पर खोज-शोध कर रहे हैं। इस प्रकार अब पाणिनि का व्याकरण समस्त विश्व में इन्टरनैट पर छा गया है।

पाणिनि के उन भाषिक सिद्धान्तों का, जो आधुनिक कम्प्यूटर विज्ञान के आधार बन रहे हैं, अत्यन्त संक्षप में संकेत देना पाठकों के लाभ के लिये आवश्यक है।

पाणिनि मुनि ने अपने आर्षज्ञान से ऐसे शब्दानुशासन-(अष्टाध्यायी)- व्याकरणशास्त्र का विलक्षण प्रवचन किया कि उनके पूर्व के सभी व्याकरणशास्त्र पीछे रह गये। उनका व्याकरणशास्त्र लोक में इतना प्रसिद्ध, ग्राह्य, स्वीकार्य और उपयोगी सिद्ध हुआ कि उनका यशोगान बच्चा-बच्चा करने लगा, पाणिनि का नाम प्रत्येक की जुबान पर चढ़ गया और लोकोक्ति चल पड़ी, "आ कुमारं यशः पाणिनेः"। महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि ने उन के सर्वाङ्गीण पूर्ण व्याकरण शास्त्र के सम्बन्ध में कहा है कि पाणिनि मुनि पवित्र दर्भ हाथ में लेकर पूर्वाभिमुख बैठ कर अत्यन्त प्रयत्न से सूत्रों का प्रणयन करते थे, अतः उनके व्याकरण शास्त्र में एक भी वर्ण अनर्थक निष्प्रयोजन नहीं हो सकता, पूरे सूत्र का अनर्थ होने की बात तो दूर रही। (दर्भ पवित्र पाणिः प्राङ्गमुख आसीनो महता प्रयत्नेन सूत्राणि प्रणयति स्म, तत्राशक्यमेकेनापि वर्णेनानर्थकेन भवेतुं किम्पुनरियता सूत्रेण")। इतनी यान्त्रित समानता पाणिनि की अष्टाध्यायी में है। एक एक स्वर का निश्चित और निर्णायक प्रतिपादन होने के कारण काशिकाकार ने पाणिनि की महती सूक्ष्मेक्षिका की संस्तुति की है, ''महती सूक्ष्मेक्षिका वर्तते सूत्रकारस्य"। ऐसे अद्भुत शास्त्र के लिए अनायास ही महाभाष्यकार पतञ्जलि को कहना पड़ा, "पाणिनीयं महत् सुविहितम्, "पाणिनि शब्दो लोके प्रकाशते," आदि। केवल ४००० सूत्रों द्वारा पाणिनि ने वैदिक और लौकिक भाषा की संरचना का सवाङ्गीण और सम्पूर्ण अशेष विश्लेषण

और वर्णन (अन्वारव्यान) करके सागर को सचमुच गागर में भरने का चमत्कार कर दिखाया। अतः उनकी अष्टाध्यायी आधुनिक यान्त्रिक कम्प्यूटर से कम चमत्कारिक नहीं हो सकती। ऐसी यान्त्रिक संरचना के मूलभूत सन्दर्भसूत्र कौन से हैं, यह हम अनुपद दर्शा रहे हैं (यान्त्रिक डाइग्राम लेखक की पूर्वोक्त पुस्तकों में देखें)। पाणिनीय अष्टाध्यायी का विषय शब्दानुशासन भाषा के विश्लेषण, संरचन और अन्वाख्यान के ताने-बाने का मूलाधार कारक प्रकरण है जो भाषा में सर्वत्र ओतप्रोत है। इस का प्रसङ्ग १.४.२३ से १.४.५५ तक है जिसका अधिकार सूर्य कारके (अष्टा. १.४.२३) है। पाणिनि की 'कारक' की अवधारणा भाषिकी दृष्टि से इतनी मौलिक और यान्त्रिकी दृष्टि से इतनी गहरी है कि उसके वर्णन के लिये एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखने की आवश्यकता है। यहाँ इतना ही कहना आवश्यक है कि पाणिनि का सूत्र 'कारकम्' (प्रथमा विभक्त्यन्त) नहीं है जो अपादान आदि का विशेषण बने जैसा कि अगले सूत्रों की व्याख्या में किया जाता है, यदि ऐसा होता तो पाणिनि :कारकम्' ही पढ़ते जिससे कि लाथव भी रहता। पाणिनि का सूत्र 'कारके' (अष्टा. १.४.२३) सप्तमी विभक्त्यन्त है, ..... . जो कारक और क्रिया का अनिबार्य सम्बन्ध घोषित करता है और जिसे वस्तविक रूप में समझ कर अगले समूचे प्रकरण की व्याख्या करने की आवश्यकता है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने इस पर लम्वा विवाद देकर इस सूत्र को सप्तमी विभक्ति में पढ़ने के महत्त्व की ओर संकेत किया है जो यान्त्रिकी और भाषा वैज्ञानिक महत्त्व का है। किन्तु उत्तरोत्तर काल में व्याख्याकारों की समझ से यह दूर हो गया।

पाणिनि की अगला महत्त्वपूर्ण सूत्र, 'समर्थ पदविधिः' (अष्टा. २.१.१) है। यह परिभाषा सूत्र है, जिसका प्रयोग और उपयोग सारे शास्त्र में पदविधि के प्रसङ्ग में अनिवार्य है अन्यथा पदविधान की व्याख्या असम्भव हैं किन्तु यह अत्यन्त खेद का विषय है कि पदविधि के लिये इस अनिवार्य समर्थ के सिद्धान्त को परम्परा ने धूल परतों के गर्त्त में दवा दिया। महाभाष्यकार के समय तक समर्थ का यह आधारभूत सिद्धान्त जो पदों को वाक्य में जोड़ कर भाषा को संजोता है और उसे प्रयोगार्ह बनाता है- अपने मूल अभिप्राय से हट कर विवाद का विषय बन चुका था। महाभाष्यकार के समय तक समर्थ की व्याख्या कम से कम चार प्रकार से भिन्न-भिन्न रूप से की जाने लगी थी। महाभाष्यकार को इसके मूल अभिप्राय तक पहुँचने के लिये यह प्रश्न उठाना पड़ा, "अथ समर्थ शब्दस्य को अभिप्रायः?" इस के मूल अभिप्राय तक पहुँचने के लिये महाभाष्यकार को बहुत तर्कवितर्क की माथापच्ची करनी पड़ी और अन्त में पाणिनि के सूत्रों की अन्तःसाक्षी के आधार पर इसका मूल अभिप्राय खोज निकाला। इसे हमने अपनी पुस्तक "समर्थ थ्योरी ऑफ पाणिनि एण्ड सेन्टेन्स डिसाइरेशन" में विस्तार से दिया है, यहाँ उसका अवकाश नहीं है।

पाणिनि की भाषा संरचना का अगला आधार-भूत सूत्र अनूभिहित (अष्टा. २.३.१) है जो अधिकार सूत्र है, पाद की समाप्ति तक सुप् विभक्तियों का विधान जिस के आधार होता है। यह अनभिहित क्या है ओर इसका प्रयोग और उपयोग व्युत्पत्ति प्रक्रिया में कैसे होता है, परम्परा ने इसे सर्वथा भुला दिया। कर्मणि द्वितीया (अष्टा. २.३.२) आदि सूत्रों के द्वारा राम आदि प्रतिपादिकों से आंख मींच कर द्वितीया आदि विभक्तियां लाभ कर 'रामम', रामेण समाभ्याम् आदि सुबन्द पदों की सिद्धि करते हुवे पाणिनि के अध्येता विद्वान् यह सर्वथा भूल जाते हैं कि 'अनभिहित' यहाँ कहाँ और कैसे है? पाणिनीय अष्टाध्यायी में अनभिहित और अनभिहित की द्विभार्गीय पद्धति सर्वथा लुप्त हो गयी, जो आज की कम्प्यूटर पद्धति का मूलभूत आधार और सिद्धान्त है। 'अभिहित' की स्थिति क्रिया में होती है

और अनभिहित नाम में स्थित होता है जो वाक्य की संरचना के लिये अभिन्न अंग है।

पाणिनि के भाषिक और यान्त्रिक सिद्धान्तों की लम्बी सूची न देता हुआ केवल एक ही और अन्तिम सिद्धान्त का संकेत करता हूं और यह है पाणिनि के 'वाक्य' का सिद्धान्त जो पाणिनि ने "वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः (अष्ट.१.२.२८२) से पाद के अन्त तक चलाया है। वाक्य की क्या परिभाषा है, यह पाणिनि ने कहीं नहीं वतलाया, यद्यपि अपनी अष्टाध्यायी में पाणिनि ने तीन सूत्रों में 'वाक्य' शब्द का प्रयोग किया है, यद्यपि 'वचो ऽशब्दसञ्ज्ञानाम्" (अष्टा. ७.३.६७) सूत्र से यह सिद्ध है कि वाक्य शब्द की सञ्ज्ञा है। पाणिनि के अनुसार वाक्य की क्या परिभाषा है, यह उनके सूत्रों की अन्तःसाक्षी के आधार पर खोजा जा सकता है। यद्यपि कात्यायन ने वाक्य की परिभाषा देकर "समर्थः पदविधिः" (अष्टा. २.१.१) को नकारने के प्रस्ताव रखा किन्तु पतञ्जलि ने उसे अपने महाभाष्य में नकार दिया। मीमांसक, नैयायिक और साहित्य शास्त्रियों ने अपने-अपने विषय की दृष्टि से वाक्य परिभाषित किया, किन्तु पाणिनि के भाषाशास्त्र में वह उपयुक्त सिद्ध नहीं होता। विषय को पूरी तरह समझने के लिये हमारी पूर्वोक्त पुस्तकें देखें।

वाक्य भाषा की प्रयोगार्ह प्रतिष्ठित इकाई है। पाणिनि की व्युत्पत्ति प्रक्रिया की यह पर्यवसान है। समर्थ; पद और वाक्य के बीच की इकाई है। पाणिनि के समय मौलिक सिद्धि प्रक्रिया क्या थी, यह अज्ञान के गर्त्त में चला गया, यद्यपि पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में इसके संकेत दिये हैं। पाणिनि स्वयं अपने छात्रों अष्टाध्यायी पढ़ाते थे। महाभाष्य के समय तक आते-आते पर्याप्त कुछ लुप्त हो गया। कई स्थानों पर सूत्रों के मूल अभिप्राय के प्रति अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते हुए पतञ्जलि कहते हैं, "इदमेव न विज्ञायते किमत्राचार्यस्याभिप्रेतम्। काशिकाकार ने महाभाष्य के आधार पर संक्षिप्त वृत्ति लिखी। प्रक्रियाकाल (प्रक्रिया कौमुदी आदि) तक आते-आते तो पाणिनि की अष्टाध्यायी का मौलिक स्वरूप सर्वथा भ्रष्ट, विकृत और आधा-अधूरा रह गया। भट्टोजि दीक्षित ने वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी की रचना करके भाषा के अभिन्न अङ्ग स्वर को सर्वथा समाप्त कर दिया, जिसका प्रतिपादन पाणिनि ने भाषा की सार्थ इकाई धातु और प्रतिपदिक से लेकर पद और वाक्य तक किया था। अनुवृत्ति की भाषिक तकनीक कौमुदी में सवथा नष्ट हो गई। पाणिनि की अष्टाध्यायी जो भाषा की अन्तिम इकाई वाक्य तक की व्युत्पत्ति सस्वर करती थी, कौमुदी के काल तक केवल सुवन्त और तिङन्त की पदसिद्धि तक सिमट कर रह गई। पाणिनि की कारक, समर्थ, अनभिहित और वाक्य आदि की वैज्ञानिक और यान्त्रिक अवधारणायें सव अज्ञात हो गईं। आज पाणिनि के पारम्परिक विद्वान् भी इन अवधारणाओं से सर्वथा अनभिज्ञ हैं और अष्टाध्यायी के व्याख्याकार केवल पद सिद्धि तक की व्याख्या करके परमसन्तोष का अनुभव करते हैं।

विडम्वना देखिये कि पाणिनि की अष्टाध्यायी का वैज्ञानिक और यान्त्रिक स्वरूप मौलिक रूप में समझने के लिये कम्प्यूटर विज्ञान के विद्वान् उत्सुक हैं जवकि पाणिनि के पारम्परिक विद्वान् उपेक्षा बनाये हुवे हैं। किन्तु पाणिनि जीवित हैं और आधुनिक कम्प्यूटर विज्ञान महर्षि पाणिनि को अपने मौलिक और वास्तविक स्वरूप में उजागर करेगा। हैदराबाद की प्रसिद्ध वैज्ञानिक संस्था ट्रिपल आई. टी. (I.I.I.T.) और उस्मानिया विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के संयुक्त तत्त्वावधान में एक सप्ताह तक इसी विषय पर मेरे व्याख्यानों का अयोजन किया गया था, जहाँ कुछ शोधछात्र इसी विषय पर शोधकार्य कर रहे थे।

❑❑

# ऋषि दयानन्दभक्त पं0 गुरुदत्त विद्यार्थी के कुछ प्रेरक प्रसंग

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून)

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जी का आर्यसमाज के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। आप बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न युवक थे। मात्र २६ वर्ष के अल्प जीवन काल में ही आपने वैदिक धर्म और आर्यसमाज की जो सेवा की है, उसका मूल्याकन करना अतीव कठिन कार्य है। दयानन्द एंग्लो वैदिक स्कूल व कालेज की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। आप ऋषि दयानन्द के बाद आर्यसमाज के प्रमुख विद्वानों में से एक होने के साथ प्रमुख लोकप्रिय वक्ताओं व प्रचारकों में भी आर्यसमाज के आदर्श थे। गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द और ऋषि दयानन्द की आद्य खोजपूर्ण जीवनी के संग्रहकर्ता व लेखक रक्तसाक्षी पं. लेखराम भी आर्यसमाज की प्रमुख हस्ती रहे हैं और यह दोनों ही आपके समकालीन व सहयोगी थे। महात्मा हंसराज जी और लाला लाजपत राय भी आपके सहपाठी और मित्र थे। पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी वैदिक व्याकरण एवं प्रायः समस्त वैदिक साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान थे। अंग्रेजी भाषा पर आपका पूर्ण अधिकार था। आपके जीवनकाल व उससे पूर्व पाश्चात्य विद्वानों द्वारा वेद एवं वैदिक संस्कृति पर किए गए प्रहारों का आपने योग्यतापूर्वक उत्तर दिया। आपने लेखन, सम्पादन एवं व्याख्यानों द्वारा देश के अनेक स्थानों पर जाकर प्रचार किया। आपके निकटस्थ मित्र श्री जीवनदास पेंशनर ने आपकी श्रद्धा से भरे हुए शब्दों में जीवनी लिखी है। आज इसी जीवनी से हम पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी जी के कुछ प्रसंगों को प्रस्तुत कर रहे हैं।

श्री जीवनदास पेंशनर ने लिखा है कि सन् १८८८ का वर्ष पण्डित गुरुदत्त के जीवन में बड़ा ही स्मरणीय समय था। इसी साल उन्होंने मोनियर विलियम्स की "इण्डियन विजडम" पर दोशालोचनात्मक व्याख्यान दिए, स्वर विद्या का अध्ययन किया, वेदमन्त्रों के उच्चारण करने की शुद्ध रीति जारी की। यह एक ऐसा काम था, जिसके परिणाम की कल्पना करना सुगम नहीं। यदि वे कोई और काम न भी करते तो केवल इतना कार्य ही उन्हें अपने समय के महापुरुषों में उच्च स्थान दिलाने के लिए पर्याप्त था।

लेकिन सबसे बढ़कर बहुमूल्य काम जो उन्होंने किया, और जिस के लिए हम सब को उनका कृतज्ञ होना चाहिए वह उनका वैदिक धर्म का प्रबल प्रतिपादन है। उन दिनों वैदिक धर्म को ब्राह्मणों ने बहुत कुछ कलंकित कर रखा था। पश्चिमीय विचारों से प्रभावित शिक्षित लोग आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर असंख्य प्रश्न करते थे। इन लोगों का उन्हीं के शास्त्रों से मुकाबला करने के लिए धर्म के एक बड़े ही प्रबल व्याख्याता की आवश्यकता थी। एक ऐसा विद्वान् चाहिये था जो विपक्षियों की आपत्तियों का युक्तिसंगत रीति से खण्डन कर सके और संशयात्मक लोगों के अनुरागहीन प्रश्नों का आदर और सहानुभूति के भाव के साथ युक्तियुक्त व समुचित उत्तर भी दे सके। इसके साथ ही वह विद्वान् ऐसा होना चाहिये था कि जो अन्य धर्मों से वैदिक धर्म की सर्वश्रेष्ठता का भी समर्थन कर सके। ऐसा मनुष्य जगदीश्वर ने पण्डित गुरुदत्त के रूप में समाज को प्रदान किया था। उन्होंने बड़ा ही उत्कृष्ट कार्य किया। उनके निर्भय होकर सत्य का प्रकाश करने के लिए उनके विपक्षी भी उनकी प्रशंसा करते थे।

दिसम्बर १८८८ ईस्वी में जो व्याख्यान उन्होंने लाहौर आर्यसमाज के उत्सव पर दिया, वह स्थायी रूप से संगह करने योग्य है। उन्होंने कहा कि "आधुनिक विज्ञान चाहे उसमें कितने ही गुण क्यों न हों, जीवन की समस्या पर कुछ भी प्रकाश नहीं डालता। वह मनुष्य के आत्मा में आन्दोलन पैदा करने वाले सबसे महान् और कठिन प्रश्न-मनुष्य जाति के आदि मूल और इसके अन्तिम भाग के हल करने में कुछ भी सहायता नहीं करता। आधुनिक विज्ञानी चाहे प्रत्येक नाड़ी और हड्डी को

चीर डालें, चाहे लहू की एक बून्द की अतीव प्रबल सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र जो सम्भवतः उसे मिल सकता है, बड़ी सूक्ष्म परीक्षा कर लें, पर इस प्रश्न पर उस से कुछ भी बन नहीं पड़ता। वह जीवन के रहस्य को खोल नहीं सकता। वह चाहे शताब्दियों तक चीर फाड़ और परीक्षण करता रहे पर जीवन की समस्या के विषय में उनका ज्ञान कुछ भी बढ़ न सकेगा। यह समस्या वेदों की सहायता के विना हल नहीं की जा सकती। वही केवल इस अद्‌भुत रहस्य का उद्‌घाटन कर सकते हैं और उन्हीं की ओर वैज्ञानिक लोगों को अन्त को आना पड़ेगा। इस प्रवृत्ति के चिन्ह पहले ही हैं। वेदों को प्राचीन ऋषि सब विद्याओं का स्रोत समझते हैं और उनका यह विश्वास सत्य भी था। वह केवल उन्हीं के अध्ययन में लगे रहते थे, और उनके अन्दर भरी सच्चाइयों का चिन्तन करते थे। उस समय आर्यावर्त में इतना सुख और इतनी समृद्धि थी कि उस के समान अब कहीं दिखाई नहीं देती। लोक और परलोक दोनों का ही सुख वेदों के अध्ययन का फल हैं बड़े ही दुःख का विषय है कि आर्यावर्त्त वैदिक धर्म से पतित हो गया है। जिस रसातल को यह पहुँचा है वहाँ पहुँचने से यह बच नहीं सकता था। इसने अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ा चलाया है। यद्यपि पिछली बातों पर विचार करके अंधकार सा दीखने लगता है फिर भी भावी आशाएं आनन्द-दायक हैं। सचाई का वही नित्य सूर्य अर्थात् वेद पुनः प्रकट हो गया है। इसने मूढ़ विश्वास के बादलों को सर्वथा छिन्न-भिन्न कर दिया है। संसार पर छाया हुआ अशुभ अंधकार दूर हो गया है और भास्कर पहले के से तेज के साथ पुनः चमक रहा है। यह सुखद अवस्था स्वामी दयानन्द के परिश्रम का ही फल है। उसी ने हमें उस प्रकार के दर्शन कराए हैं, जिसका कि प्राचीन ऋषि आनन्द लूटा करते थे। यद्यपि कई एक ने इस कृपा को देखा और इसका आदर किया है फिर भी बहुत से लोग, चिरकाल से अंधकार में रहने का स्वभाव होने के कारण या तो इसमें सन्देह करते हैं या उस प्रकाश में जाने से हठपूर्वक इनकार करते हैं। जिन लोगों की आत्माएं मूढ़ विश्वास के अन्धकार से बाहर निकल चुकी हैं उन सब का यह परम कर्तव्य है कि वे संशयात्मक लोगों के संशय की, और धर्मांध तथा दुराग्रही लोगों की धर्मान्धता तथा दुराग्रह की चिकित्सा करें। इसका केवल यही उपाय है कि उस संस्था की सहायता की ाए जहां कि आगामी पीढ़ियां क्रमशः और अगोचर रीति से अन्ततः वहाँ जाने के लिए तैयार की जा रही हैं। वक्ता ने किसी संस्था का नाम नहीं लिया, जनता जानती थी कि किस संस्था की उन्हें सहायता करनी चाहिए। महाघोष करतल-ध्वनि में वक्ता बैठ गए।

हमें लगता है कि पंडित गुरुदत्त जी ने जिस संस्था की सहायता करने का अनुरोध व संकेत किया है, वह संस्था गुरुकुल कांगड़ी थी। हमारे इस लेख में पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी द्वारा पाश्चात्य विद्वान् मोनियर विलियम्स की पुस्तक "इण्डियन विजडम" का खण्डन, स्वर विद्या का अध्ययन व प्रचार तथा आर्यसमाज लाहौर में दिया गया दुर्लभ, ऐतिहासिक, ज्ञानवर्धक एवं हृदयग्राही व्याख्यान है। लेख को विराम देने से पूर्व हम यह भी बताना चाहते हैं कि पंडित गुरुदत्त जी के समस्त उपलब्ध कार्यों को Works of Pandit Gurudutt Vidyarthi एवं इसके प्रो० सन्तराम जी कृत हिन्दी अनुवाद को 'गुरुदत्त लेखावली' के नाम से प्रकाशित किया गया है। पंडित जी का लघु जीवनचरित उनके घनिष्ठ मित्र श्री जीवनराम पेंशनर ने लिखा था एक जीवन चरित प्रसिद्ध क्रान्तिकारी व ऋषिभक्त लाला लाजपतराय ने लिखा है। आर्य विद्वान् डॉ. रामप्रकाश और प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने भी उनके जीवनचरित लिखे हैं। प्रो० सन्तराम जी कृत हिन्दी अनुवाद अनेक स्थानों पर कुछ जटिलता लिए हुए हैं। हमारा अनुमान है कि इसका सरल अनुवाद श्री घूड़मल प्रह्लादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डोन सिटी के श्री आर्यमुनि वानप्रस्थी जी ने कर यिा है जो प्रकाशन की प्रतीक्षा में है। पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जी के प्रशंसक इसके प्रकाशनार्थ न्यास को आर्थिक सहायता प्रदान कर प्रकाश करा सकते हैं। इसी के साथ हम इस लेख को विराम देते हैं।

❑❑

# मोक्ष का स्वरूप

(श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज)

मोक्ष के साधन ज्ञान कर्म उभय हैं। वह समुच्चयवाद से है यह मैं पिछले लेख में सप्रमाण लिख चुका हूँ उसके पश्चात् मोक्ष का स्वरूप भी चिन्तनीय है। प्रथम यह चिंतनीय है मोक्ष भाव रूप है व अभावरूप है। आर्यसमाज मोक्ष को भावरूप मानता है। साधारण रीति से भी देखा जाय तो जीव की प्रवृत्ति सर्वथा अभाव में नही है। यह सत्य है जीव दुःख नहीं चाहता दुःखाभाव चाहता है वह भी केवल दुःखाभाव ही नहीं उसके साथ सुख हो, तभी तो जीव प्रसन्न होता है केवल अभाव तो शून्य ही होगा इसलिये केवल अभाव मानना शून्यवाद का दूसरा नाम ही है जिसे वैदिक सिद्धान्त लिखना ठीक नहीं है इसलिये आर्य-समाज मोक्ष को भावरूप मानता है सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ६ पृष्ठ २६३ पर निम्न पाठ है-

प्रश्न- मुक्ति किसको कहते हैं?

उत्तर- -मुञ्चति प्रथग्भवन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः जिसमें छूट जाना हो, उसका नाम मुक्ति है।

प्रश्न- किससे छूट जाना?

उत्तर- जिससे छूटना चाहते हैं।

प्रश्न- किससे छूटना चाहते हैं?

उत्तर- दुःख से।

प्रश्न- छूट कर किसको प्राप्त होते और कहाँ रहते हैं?

उत्तर- सुख को प्राप्त होते हैं और ब्रह्म में रहते हैं।

इस पाठ से सिद्ध है कि महर्षि जी मोक्ष को भावरूप मानते हैं। इसके पश्चात् एक बात विचारणीय है, वह यह कि मोक्षावस्था में जीव ब्रह्मरूप हो जाता है व जीव जीव ही रह कर मोक्ष सुख का भोक्ता होना है। यदि जीव को ब्रह्मरूप की प्राप्ति स्वीकार कर ली जाय उस अवस्था में जीव सुखरूप (आनन्द रूप) तो हो जाएगा क्योंकि ब्रह्म को सब ही सच्चिदानन्द रूप मानते हैं उस अवस्था में वह सुख का भोक्ता न होगा। ब्रह्म को कोई भी भोक्ता नहीं मानता है। जो भोक्ता होगा वह कर्त्ता भी होगा यह सामान्य नियम है। जीव कर्त्ता है अतः भोक्ता है जीव कभी दुःखी होता है कभी सुखी। जीव को सुख दुःख निमित्त से होते हैं ब्रह्म में वैसा निमित्त न होने से वह जीववत् भोक्ता न होगा और जीव ब्रह्मरूप न होगा।

इस विषय में सबसे अधिक विचार उपनिषद् और वेदान्त सूत्रों में हैं और सूत्रों के विषय वाक्य उपनिषद् वचन ही हैं इसलिये मैं उनके पाठ लिखना उचित जान कर लिखता हूँ आशा है पाठक उन पर विचार करें-

संपाद्याविरभाव स्वेन शब्दात्। वेदांत सूत्र अध्याय ४ पाद ४ सूत्र १ मुक्तः प्रतिज्ञानात् २ आत्मा प्रकरणात ३।

इन सूत्रों के विषय वाक्य इस प्रकार हैं-

एवमेवैष सप्रसादोऽगेग्माच्छरारात्समुत्थाय पर ज्योतिरूपसंपद्य स्वेन रूपेणभिनिष्पद्यते। स उत्तम पुरुष। छन्दोग्योपनिषद् ८, १२, ३।

भावार्थ- इस प्रकार यह जीव (सप्रसाद) इस शरीर से पृथक् होकर परं ज्योति (ब्रह्म) को प्राप्त होता है और अपने स्वरूप में (स्वेन रूपेण) स्थित होता है वा स्वराय को प्राप्त हो प्राप्त होता है वह उत्तम पुरुष है।

इसमें शङ्का होती है इसको मोक्ष विषयक क्यों माना जाये यह किसी अन्य अवस्था का प्रतिपादक क्यों नहीं? इस शङ्का के निवारण करने के लिये दूसरा सूत्र है "मुक्त प्रतिज्ञानात्" इसका विषय वाक्य है।

अशरीर वाव सन्त न प्रियाप्रिये स्पृशत। छा. ८ १२ १।

शेष पृष्ठ २२ पर देखें

# भूल-सुधार

(दिनेश कुमार शास्त्री)

प्रिय पाठकवृन्द! 'दयानन्द सन्देश' जुलाई २०१६ के अंक में मुखपृष्ठ पर मुद्रित आषाढ़-बैसाख के स्थान पर आषाढ़-श्रावण पढ़ा जाए एवं प्रकाशित लेख 'हाय! दिनकर जी क्या लिख गये!' के आरम्भ में कुछ शब्द छूट गये थे। कृपया उसे इस प्रकार पढ़े जायें- नेहरू ने दिनकर जी की पुस्तक 'संस्कृति...।

इसी प्रकार 'दयानन्द सन्देश' जून २०१६ के अंक में प्रकाशित लेख 'हाय! दिनकर जी ....! में तकनीकी गड़बड़ी के कारण कुछ सामग्री छुट गयी थी। पृष्ठ १४ पर दूसरी पारी में कुछ और प्रमाण देखिये से पूर्व की पंक्तियां इस प्रकार हैं-

"हिन्दुत्व का, केवल वेद-उपनिषद् वाला ही नहीं, बल्कि, वह रूप भी सत्य है जिसका आख्यान पुराणों एवं सन्तों की जीवनियों में मिलता है।" (पृ. ४६७)

वर्तमान के सम्पूर्ण हिन्दुत्व को बचाना स्वामी दयानन्द का उद्देश्य था ही नहीं। वे तो हिन्दुत्व की गन्दगी को दूर कर उसे आर्यत्व में बदलना चाहते थे, जो उसका मूल (शुद्ध) रूप था। विवेकशील व्यक्ति न तो सम्पूर्ण हिन्दुत्व का समर्थन करेगा और न कोई उसका प्रचार कर सकता है, चाहे स्वामी विवेकानन्द ही क्यों न हों। दिनकर जी उन्हें भले ही महर्षि वाल्मीकि या वेदव्यास के समान प्रतिभाशाली मानें, चाहे भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म का सबसे महान प्रचार कहें। फिर भी यह सत्य है कि वे सम्पूर्ण हिन्दुत्व के समर्थक नहीं थे। विदेशों से अपने शिष्यों को लिखे पत्रों में स्वामी विवेकानन्द लिखते हैं- "जिन (रामकृष्ण परमहंस) की पवित्रता, प्रेम और ऐश्वर्य का राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, चैतन्य आदि में कण मात्र प्रकाश है, उनके निकट नमकहरामी।... बुद्ध, कृष्ण आदि का तीन चौथाई हिस्सा कपोल कल्पना के सिवा और क्या है? अरे तुम ऐसे दयालु देव की दया भूलते हो? बुद्ध, कृष्ण, ईसा पैदा हुए थे या नहीं, इसका कोई प्रमाण नहीं है...।" (इंग्लैण्ड से, स्वामी ब्रह्मानन्द के लिए)

"अगर भला चाहो तो घंटा-संटा गंगा में बहाकर साक्षात् भगवान् नारायण नर-देहधारी हर एक मनुष्य की पूजा करो।... लाखों रुपये खर्च कर काशी तथा वृन्दावन के मन्दिरों का पट खुलता और लगता है। कहीं ठाकुर जी वस्त्र बदल रहे हैं, तो कहीं भोजन अथवा और कुछ कर रहे हैं,... किन्तु दूसरी ओर जीवित ठाकुर भोजन तथा विद्या के बिना मरे जा रहे हैं।..." (अमेरिका से, गुरुभाइयों के लिए)

"साधु-संन्यासी तथा ब्राह्मण दुष्टों ने देश को रसातल में पहुँचाया है। देहि-देहि की रट लगाना तथा चोरी बदमाशी करना- किन्तु हैं धर्म के प्रचारक। धन कमाएंगे, सर्वनाश करेंगे, साथ ही यह भी कहेंगे कि हमें न छूना...।"

"छः वर्ष की लड़की के गर्भाधान की जो लोग वैज्ञानिक व्याख्या करते हैं, उनका धर्म कहाँ का धर्म है...।" (अमेरिका से- ब्रह्मानन्द के लिए)

"राधाकृष्ण प्रेम सम्बन्धी किसी प्रकार की भूल नहीं होनी चाहिए। यह ध्यान रखना कि युवक-युवतियों के लिए राधा कृष्ण लीला एकदम विष तुल्य है।" (दार्जिलिंग से- श्री रामकृष्णानंद के लिए)

अप्रैल २०१६ के अंक में प्रकाशित लेख 'हाय! दिनकर जी....' में पृष्ठ ११ पर कुछ शब्द छूट गये थे। कृपया, उस वाक्य को इस प्रकार पढ़ें- हद तो तब हो गई, जब देश ने सुना कि भारत के तत्कालीन गृहमंत्री ने ३० सितम्बर २००६ को उसे आतंकवादी घोषित करने वाला गुजरात उच्च न्यायालय (६ अगस्त ०६) का हलफनामा ही बदलवा दिया था।

□□

# योगेश्वर श्रीकृष्ण

(डॉ० शिव कुमार शास्त्री)

विचार विचक्षण पाठकवृन्द! गोपाल सहस्र नाम की पुस्तक में योगीराज कृष्ण को चोरों और बदमाशों का सरताज कहा गया है **चौर : जार : शिरोमणि।** भक्त शिरोमणि सूरदास के शब्दों में-

**नीवी ललित गही जदुराई।**

**जबहिं सरोज धरयो श्रीफल पर तब यशुमति तहं आई।।**

नीवी कहते हैं नाड़े को और श्रीफल का अर्थ है स्तन, इससे अधिक स्पष्ट अर्थ करने की मैं आवश्यकता नहीं समझता।

मतिराम, बिहारी, देव, विद्यापति आदि कवियों ने श्रीकृष्ण की जो छीछलेदर की है क्या किसी जासामान्य की भी वैसी होगी? भागवतपुराण, सूरदास और रीतिकाल के कवियों ने कृष्ण जी महाराज का जो चित्र उपस्थित किया है, उसे पढ़कर और सुनकर माथा शर्म से झुक जाता है।

बारह वर्ष की कठोर तपस्या के पश्चात् प्रद्युम्न हुआ। श्रीकृष्ण को अपनी इस सन्तान पर इतना गर्व था कि उसे 'मे सुतः' कहकर गौरवान्वित होते थे। क्या ऐसा तपस्वी और सदाचारी व्यक्ति गोपियों के पीछे भाग सकता है? चोर और लम्पट हो सकता है?

भगवान् कृष्ण एक आदर्श महामानव और नेता थे। वे जानते थे कि **यद् यद आचरति श्रेष्ठः तत् तत् एव इतरे जनाः** जैसा बड़े लोग आचरण करते हैं, वैसा ही अनुसरण उनके अनुयायी किया करते हैं।

आज राधा के बिना कृष्ण की कल्पना भी नहीं हो सकती। परन्तु पुराणों के अनुसार भी राधा कृष्ण की पत्नी नहीं मामी थी। मामी का स्थान मातृवत् होता है। परन्तु तथाकथित कृष्णभक्तों ने कृष्ण को राधा के साथ निम्न स्तर का उपहास करते हुए चित्रित किया है। महाभारत में भगवान् कृष्ण का जीवन अनेक पक्षों से चित्रित हुआ है, परन्तु उसमें कहीं राधा के नाम की गन्ध भी नहीं है।

योगीराज कृष्ण का हमारे इतिहास में उल्लेखनीय नाम है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम और योगीराज कृष्ण के बिना हमारी संस्कृति अधूरी है। वे दोनों व्यक्तित्व युगपुरुष थे। अपने-अपने समय में दोनों ने वैदिक संस्कृति की रक्षा के लिए सर्वस्व होम दिया। शुक्राचार्य अपने नीतिसार नामक ग्रन्थ में लिखते हैं- **न कूटनीतिरभवत् श्रीकृष्ण सदृशो नृपः** अर्थात् आज तक भूमण्डल पर श्रीकृष्ण के समान कोई कूटनीतिज्ञ नहीं हुआ।

पाण्डवों का सम्पूर्ण राजनीतिचक्र कृष्ण जी के हाथ में था। उन्हीं की कूटनीति से भीष्मपितामह, गुरु द्रोणाचार्य, जयद्रथ, कर्ण, दुर्योधन आदि का वध संभव हुआ। यदि कृष्ण जी महाराज पाण्डवों की ओर न होते, तो महाभारत का रूप कुछ और ही होता।

श्रीकृष्ण आदर्श मित्र थे। उन्होंने जहाँ सुदामा के साथ मित्रता का आदर्श निभाया, वहाँ अर्जुन के लिये भी मित्र के रूप में काम आए। अर्जुन के सम्बन्ध में श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा था- **मांसान्युत्कृत्य दास्यामि फाल्गुनार्थे महीपते।** यदि आवश्यक हुआ तो मैं अर्जुन के लिए अपना मांस भी काट कर दे सकता हूँ।

निर्भीकता की प्रतिमूर्ति कृष्ण जी महाराज ने कौरवों की सभा में चारों ओर शत्रुओं से घिरे रहने पर भी कड़क कर कहा था-

"दुर्योधन! लाक्षागृह तुमने बनवाया था। भीम को विष तुमने दिया था। जुए का खेल तुमने रचाया था। भरी सभा में द्रौपदी का अपमान तुमने किया, फिर भी

अपने को निर्दोष सिद्ध करने में लगे हो। निश्चय ही तुम्हारी जीवन लीला समाप्त हो चुकी है। शान्ति अच्छी थी, तू उसे ठुकरा रहा है।"

कृष्ण जी महाराज ने वड़ी-बड़ी क्रान्तियाँ कराईं परन्तु किसी लोभ-लालच के वशीभूत नहीं, अपितु अन्याय का सामना करने के लिए। उन्होंने जो भी देश जीता उसे अपने आधीन करने की कभी भी चेष्टा नहीं की और न ही अपने किसी सम्वन्धी को उसका लाभ पहुँचाया। श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण जीवन नैतिकता के आधार पर प्राणिमात्र का सुख-चिन्तन करते हुए व्यतीत हुआ। जीवनपर्यन्त श्रीकृष्ण ने विश्व-कल्याण किया। सन्ध्या और हवन उनके जीवन के महत्वपूर्ण अंग थे। जिस समय पाण्डवों के दूत वनकर वे दुर्योधन के पास जा रहे थे, रास्ते में सूर्यास्त के समय उन्होंने रथ रुकवा कर सन्ध्या की-

**अवतीर्य रथातूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि।**
**रथमोचनमादिश्य सन्ध्यागुपविवेश ह।।**

यह है योगीराज कृष्ण का सच्चा स्वरूप। आर्यजगत् उन्हें सदाचारी और संयमी मानता है, अन्य लोग लम्पट तथा धूर्त! आर्यजगत् उन्हें योगी मानता है, तो कुछ लोग भोगी। आज की इन विषम परिस्थितियों में भगवान् कृष्ण को स्मरण कर हम अपने कर्तव्य का पालन कर सकते हैं।

श्रीकृष्ण ने कहा था—स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः अर्थात् अपने कर्तव्य का पालन करते हुए यदि प्राणों की आहुति भी देनी पड़े तो श्रेयस्कर है। योगीराज की गीता कर्तव्य का पाठ पढ़ा रही है। प्रसिद्ध स्वतन्त्रता-सेनानी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने कहा था-

**अपहाय निजं कर्म कृष्ण कृष्णेति वादिनः।**
**ते हरेर्द्वेषिणः पापा धर्मार्थं जन्म यद्धरेः।।**

जो कर्तव्य से तो पराङमुख रहते हैं और कृष्ण के नाम की माला जपते हैं, वे कृष्ण के सब से बड़े दुश्मन और पापी हैं, क्योंकि कृष्ण का जन्म धर्म की स्थापना और कर्तव्यपरायणता के लिए हुआ था। जो भगवान् कृष्ण के नाम की माला तो जपते हैं, बड़े-बड़े मन्दिर और मूर्तियाँ बनवाते हैं, कीर्तन करते हैं, परन्तु अपने चरित्र को नहीं सुधारते, वे केवलमात्र भाण्ड के समान ही हैं।

योगीराज कृष्ण का एक नाम है गोपाल। हम जय गोपाल, जय गोपाल करने वाले इस ओर कभीं ध्यान नहीं देते कि गोपाल के देश में सूर्य निकलने से पहले हजारों गायों का कत्ल कर दिया जाता है। आज देश को मुरलीधर कृष्ण की नहीं चक्रधर कृष्ण की आवश्यकता है। आज हमें रासलीला वाले कृष्ण के अनुयायी नहीं, अन्याय का विरोध करने वाले कृष्ण का अनुयायी वनना होगा। चित्र एक माध्यम है। उसके द्वारा हमें वैसा बनने का प्रयत्न करना चाहिए।

महाभारत काल में तो एक द्रौपदी का चीरहरण हुआ था, आज नारी जाति के सम्मान का दम भरने वाले हमारे देश में अनेक द्रौपदियों का सरेआम चीरहरण ही नहीं शरीर नीलाम होता है। आज हम इस देश में ही नहीं, जब सारे विश्व में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का पर्व धूमधाम से मना रहे हैं, तो तो हमें इस बात की प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम उस युगपुरुष के सच्चे अनुयायी वनकर देश में व्याप्त अन्याय के विरुद्ध सतत संघर्ष करते हुए अपने कर्तव्य का पालन करेंगे। महर्षि दयानन्द के शब्दों में, **"श्रीकृष्ण चन्द्र का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है, जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त कुछ भी बुरा काम किया हो, ऐसा नहीं लिखा।"** ❑❑

पृष्ठ १८ का शेष

भावार्थ- जीव को सुख दुःख शरीर साथ होने की अवस्था में ही होते हैं अशरीर अवस्था में इनकस स्पर्श नहीं होता इसलिये यह अशरीरावस्था विषयक होने से मोक्ष विषयक ही है। और प्रकरण आत्मा का है। यथा-

य आ माऽपहतपाप्मा विजये विमृत्यु। छा. ८, ७, १।

जो आत्मा पापरहित जरारहित और मृत्युरहित है उस आत्मा का प्रकरण होने से मोक्ष का ही प्रतिपादक है।

इन सूत्रों और वाक्यों में "स्वेन रूपेण" पाठ है और आगे उसे उत्तम पुरुष लिखा है क्या यह जीव ब्रह्मरूप में रहता है इस बात को कहती है वा जीव जीवरूप में ही रहता है इसका प्रतिपादक है अगले सूत्र में इस शङ्का को निवृत्त कर देते हैं।

सङ्कल्पादेव तु तच्छ्रुते। वेदांत दर्शन ४ ४ ८ मोक्ष में जितने भोग हैं सब सङ्कल्प से ही प्राप्त होते हैं संसार सम यत्न साध्य नहीं होते।

"स यदि पितृलोककामे" भवति सङ्कल्पादेवास्य पितर समुपतिष्ठन्ति। छा. ८, २, १

मोक्षावस्था में यदि पितृलोक की कामना हो तो सङ्कल्प से ही प्राप्त हो जाता है। यह सुख सङ्कल्प से मिल जाते हैं।

जब संकल्प में भाम मिलते हैं, तो ब्रह्म नहीं जीव ही होगा इसके आगे फिर लिखा है-

जगद्व्यापारवर्जे प्रसरणादसंनिहितत्वाच्च।

वेदांत दर्शन ४, ४ १७।

शङ्करभाष्य जगदुत्पत्त्यादि व्यापार वर्जयित्वान्यदाणमाद्यात्मकर्मेश्वर्य मुक्तानां भवितुमर्हति। जगद् व्यापारस्तु नित्यविद्धस्यैवेश्वस्य।

जगत् रचना तो परमात्मा के ही आधीन है यह जीव को कभी प्राप्त नहीं होता अन्य बातें मोक्ष जीव में हो जाता है। फिर सूत्रकार लिखता है-

भोग मात्र साम्य लिंगाक्ष। ४, ४, २१।

भोगमात्रमेवषामनादिसिद्धेनेश्वरेण समानमिति श्रूयते। शङ्करभाष्यम्

भोगमात्र ईश्वर की समता है अन्य सब बातों में समता नहीं है अर्थात् जीव को मोक्षावस्था में दुःख नहीं होता वह सुख में ही रहता है ब्रह्म आनन्दस्वरूप है जीव सुख (आनन्द) का भोक्ता होता है इसी सुख में दोनों की समता है। यह सब प्रमाण इस बात को सिद्ध करते हैं कि जीव और ब्रह्म मोक्षावस्था में भी भिन्न-भिन्न ही रहते हैं। यह दोनों एक कभी नहीं होते हैं इसलिये जो जीव को मोक्ष में ब्रह्मरूपता कहते हैं वह सिद्धांत ठीक नहीं है।

सत्यार्थ प्रकाश नवम समुल्लास में महर्षि ने इस बात को इस प्रकार लिखा है-

प्रश्न- मुक्ति में जीव का लय होता है वा विद्यमान रहता है?

उत्तर- विद्यमान रहता है।

प्रश्न- कहाँ रहता है?

उत्तर- ब्रह्म में।

अपनी स्वशक्ति से जीवात्मा मुक्ति में हो जाता है। और सङ्कल्प मात्र शरीर होता है जैसे शरीर के आधार रहकर इन्द्रियों के गोलक के द्वारा जीव स्वकार्य करता है वैसे अपनी शक्ति से मुक्ति में सब आनन्द भोग लेता है। क्याकि मुक्ति जीव की यह है कि दुःखों से छूट कर आनन्द स्वरूप सर्वव्यापक अनन्त परमेश्वर में जीव का आनन्द में रहना।

इस प्रकार आर्य समाज के सिद्धान्त में मुक्ति भावरूप है अभाव रूप नहीं। मोक्षावस्था में जीव ब्रह्मरूप नहीं बनता प्रत्युत जीवरूप से आनन्द का भोक्ता होता है।

**स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के लेखों की श्रृंखला क्रमशः जारी रहेगी।**

- सम्पादक

## एक पत्र पूर्णिया (बिहार) से

आदरणीय आचार्य राजवीर शास्त्री जी

सादर नमस्कार।

आपके सौजन्य से ब्रेल लिपी में प्रकाशित "सत्याथ प्रकाश को एक ऐतिहासिक कदम माना जाना चाहिए तथा इसके लिए आपकी जितनी भी प्रशंसा की जाए कम ही होगी। धन्यवाद ज्ञापन हेतु उपयुक्त शब्द का चयन तो कोई रचनाकार ही कर सकता है एक दृष्टिबाधित पाठक होने के नाते मैं इतना ही कह सकता हूँ कि "सत्यार्थ प्रकाश जैसे ग्रंथ का अध्ययन दृष्टिबाधितों के लिए असंभव था जिसे आपने संभव बना दिया है। इस ग्रंथ के प्रकाशन ने दृष्टिबाधितों के जीवन में एक नया आयाम जोड़ दिया है।

अस्तु समस्त नेत्रहीन समुदाय इस प्रकाशन के लिए आपका एव आपकी संस्थान का आभारी रहेगा।

आर्य समाज संस्थाओं की ओर से पूरे भारत में महाविद्यालय एवं विद्यालय संचालित किए जाते हैं। क्या उनमें कोई दृष्टिबाधित बच्चों से ............ भी है? यदि हाँ तो प्रशंसनीय है और नहीं तो इस बार में विचार किया जाना चाहिए। आवश्यकता पड़ी तो कोशी विकलांग कल्याण संस्थान, हाजीनगर, गढ़बरैली, जिला पूणियाँ, बिहार, विद्यालय हेतु भूमि उपलब्ध करवा सकता है।

मेरी जानकारी के अनुसार इसाई धर्म से जुड़ी संस्थाएँ ब्रेल लिपि में बाईबिल का प्रकाशन करती रही है और पाठको को निःशुल्क उपलब्ध भी कराती रही है। सनातन धर्म के लिए सत्यार्थ प्रकाश का ब्रेल प्रकाश इस संदर्भ में अध्यात्म संप्रेषण का प्रथम प्रयास ही समझा जाएगा। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है आपकी संस्था ने समाज के हाशिप जीने वाले दृष्टिबाधित समुदाय को यह विश्वास दिला दिया है कि उनकी सुधि लेने वाले लोग भी सक्रिय हैं। महर्षि दयानंद सरस्वती द्वारा अनुदित ऋग्वेद का प्रकाशन यदि ब्रेल लिपि में उपलब्ध करा दिया जाए तो दृष्टिबाधित समुदाय भी उस सत्य तक पहुँच सकता है जिससे अब तक वह वंचित है।

यथोचित आभार के साथ विनीत

डॉ. अनिल कुमार
(समाशास्त्र विभाग)
एम.एल.आर्य महाविद्यालय
कस्बा, पूर्णिया (बिहार)

# सत्यार्थ प्रकाश के माध्यम से 'प्रकाश की परम्परा' चलाना चाहते थे महर्षि दयानन्द!

(भावेश मेरजा, भरुच, गुजरात, मो. ०९८७९५२८२४७)

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने प्रमुख ग्रन्थ का नाम 'सत्यार्थप्रकाश' रखा है। अगर वे उसका नाम 'सत्यार्थप्रकाश' के स्थान पर 'सत्यप्रकाश' रखते तो वह नाम उच्चारण की दृष्टि अधिक सुगम होता और प्रथम दृष्टि से अधिक प्रभावोत्पादक (Impressive) भी। परन्तु महर्षि ने ऐसा नहीं किया। फिर भी अपने इस ग्रन्थ का नाम 'सत्यार्थप्रकाश' निर्धारित करते समय उनके मस्तिष्क में 'सत्यप्रकाश' नाम भी विकल्प के रूप में उभरा तो होगा- ऐसा अनुमान सहजता से किया जा सकता है। वैसे तो इन दो नामों में भाषाकीय दृष्टि से अधिक अन्तर नहीं है, केवल एक 'अर्थ' शब्द सत्यार्थप्रकाश में अतिरिक्त है; परन्तु इसी एक छोटे-से शब्द के समावेश के कारण महर्षि के ग्रन्थ का वास्तविक तात्पर्य प्रस्फुटित होता है। इस रहस्य को केवल वही सुधी पाठक ठीक से आत्मसात् कर पाता है कि जिसने मनोयोगपूर्वक इस ग्रन्थ का द्यन्त अनुशीलन किया हो।

महर्षि परम आस्तिक थे। वे सर्वव्यापक, निराकार, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् एक ईश्वर और उसी ईश्वर के वेद-रूपी नित्य ज्ञान में परम आस्था रखते थे। गुरुओं के गुरु अनादि ईश्वर को वे सर्व सत्य विद्याओं का स्रोत - प्रकाशक, **'शास्त्रयोनित्वात्'** (वेदान्त दर्शन : १.१.३) मानते थे। वे वेद को ईश्वर-प्रणीत, अपौरुषेय ज्ञान मानते थे, जिसका प्रकाश प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में समस्त मानव जाति के कल्याणार्थ होता है। इसलिए महर्षि एक ईश्वर को ही वास्तविक, मौलिक या स्वाभाविक सत्य प्रकाशक (Fountainhead of Truth) मानते थे। वैसे भी पुराकालीन किसी भी ऋषि ने स्वयं को मन्त्रकर्ता के रूप में प्रस्तुत नहीं किया है। ऋषि लोग वेद मन्त्र के अर्थ का प्रकाश तो कर सकते हैं, करते भी हैं, परन्तु वे (वेद) मन्त्र का सृजन नहीं कर सकते। जब-जब संसार में वेद मन्त्रों के सत्यार्थ तिरोहित हुए हैं, तब-तब ज्ञान के क्षेत्र में अराजकता पैदा हुई है और जब-जब वेदों के सत्यार्थ अनुसार सभी व्यवहार और व्यवस्थाएं चली हैं, तब-तब सब जीवों का परम कल्याण सुनिश्चित हुआ है।

महर्षि दयानन्द जी 'उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः।।' तथा 'इतरथान्धपरम्परा।।'- सांख्य दर्शन (३.७९.८१) के इन सूत्रों की सत्यता में दृढ़ विश्वास रखते थे। वे जानते थे कि- "जब उत्तम-उत्तम उपदेशक होते हैं तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं। और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते तब अन्ध परम्परा चलती है। फिर भी जब सत्पुरुष होकर सत्योपदेश होता है, तभी अन्ध ा परम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है।" (११वां समुल्लास)

वस्तुतः महर्षि वेद मन्त्र तथा वैदिक ऋषियों के ग्रन्थों के सत्य अर्थ प्रकाशित करना चाहते थे। वे ईश्वर-जीव-प्रकृति का और ज्ञान-कर्म-उपासना सम्बन्धी सर्व विषयों का सत्य-सत्य स्वरूप संसार के समक्ष प्रस्तुत करना चाहते थे। जो कुछ भी अस्तित्ववान् है, उसके यथार्थ स्वरूप का हमें निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त हो सके और हमारा जीवन-व्यवहार सत्य आधारित हो- इसी सदाशय से अनुप्राणित होकर महर्षि ने 'सत्यार्थप्रकाश' की रचना की है।

महर्षि का मन्तव्य था कि महाभारत के महा विनाशकारी युद्ध के लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व से

वेदार्थ के क्षेत्र में स्वेच्छाचार पूर्वक अनियमितताएं प्रविष्ट होनी आरम्भ हो गई थीं, और युद्धोपरान्त इसमें तेजी आई जिसके परिणामस्वरूप वेदविरुद्ध अनेक मत-सम्प्रदायों की सृष्टि हुई। फिर मध्यकालीन अयोग्य भाष्यकारों ने वेदों के अनुचित एवं अवैज्ञानिक अर्थ कर रही सही कसर पूरी कर दी। इन कारणों से वेदार्थ प्रकाश को महर्षि ने सर्वोपरि प्राथमिकता दी और इसी प्रयोजन की पूर्ति हेतु उन्होंने सत्य अर्थ का प्रकाश करने वाले इस ग्रन्थ की रचना की। उनका अपना कोई व्यक्तिगत-स्वतन्त्र धार्मिक या दार्शनिक मत तो था ही नहीं। वे तो ईश्वरीय ज्ञान वेदों के ही संवाहक-प्रचारक थे। इसीलिए उन्होंने अपने इस ग्रन्थ में स्पष्ट घोषणा की है- **"मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूँ कि जो तीन काल में सब को एक सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है।"** (स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश)

सम्भवतः ऐसे ही तथ्यों को ध्यान में रखकर परम आस्तिक, ईश्वर-समर्पित, विनम्र, निराभिमानी महर्षि ने अपने ग्रन्थ का नाम 'सत्यप्रकाश' न रखकर 'सत्यार्थ प्रकाश' निश्चित किया होगा।

'सत्य' की परिभाषा महर्षि जी ने ग्रन्थ की मुख्य 'भूमिका' में ही प्रस्तुत की है। उन्होंने लिखा है- "जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है।"

ग्रन्थ लिखने का मुख्य प्रयोजन लिखा है- 'सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश' करना अथवा 'सत्य अर्थ का प्रकाश' करना- 'सत्यार्थ का प्रकाश' करना।

उनकी दृष्टि में 'सत्य अर्थ का प्रकाश' करने का तात्पर्य है- "जो सत्य हो उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना।"

**किन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश लिखा?**

हमें लगता है कि इस सत्यार्थ प्रकाश को लिखकर महर्षि निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहते थे-

१. विश्व के सभी मनुष्यों को एक सत्य मतस्थ करना।

२. विश्व के सभी मनुष्यों को सत्य-असत्य मत के निर्णय करने में, सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग, गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग करने-कराने में समर्थ करना।

३. जो सत्य है उसको मानना-मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना-छुड़वाना।

४. पक्षपात छोड़कर सब मतमतान्तरों (सम्प्रदायों, मजहबों आदि) में पाए जाने वाले सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् सत्य का मण्डन और उनमें पाई जाने वाली मिथ्या - असत्य बातों का खण्डन करना, उनकी गुप्त अथवा प्रकट बुरी बातों का प्रकाश करना।

५. सभी मत-पन्थ-मजहबों के विद्वानों को विचार कर, विरोध-भाव छोड़कर, अविरुद्ध-मत (एक सत्य-मत) को स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित करना।

६. अपने ग्रन्थ के पाठकों का आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य- इन चारों बातों पर सम्यक् ध्यान देकर वाक्यार्थ-बोध पूर्वक किसी भी लेखक अथवा वक्ता के वास्तविक अभिप्राय को जानने का सामर्थ्य बढ़ाना।

७. अपनी बुद्धि और विद्या से तथा 'वेद-विरुद्ध पुराणी, जैनी, किरानी और कुरानी' इन मुख्य चार मतों के मूल ग्रन्थ (पुराण, जैनों के विभिन्न ग्रन्थ, बाइबिल और कुरान आदि) को देखने से महर्षि को जिस बोध ा की, विशेष ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति हुई, उसको सब के आगे निवेदित कर देना- इस अभिप्राय से कि सब लोग इसे पक्षपात छोड़कर पढ़ें, सत्य-असत्य मत का विवेक करें, और फिर अपनी-अपनी समझ के अनुसार सत्य मत का ग्रहण और असत्य मत का त्याग करना उनके लिए सहज हो सके।

८. मतमतान्तर के विवाद से जगत् में जो-जो अनिष्ट होते हैं और भविष्य में होने की सम्भावना है, उनको रोकना, उनसे मानवता को सुरक्षित करना।

९. मनुष्य जाति में प्रवर्त्तित परस्पर मिथ्या मतमतान्तर

के विरुद्ध-वाद को दूर कर सब को ऐक्य मत करना।

१०. सत्योपदेश के द्वारा अन्ध परम्परा को नष्ट कर प्रकाश की- ज्ञान-विज्ञान की परम्परा को स्थापित करना।

११. पाखण्डियों का खण्डन करना और वेदोक्त सत्य मत का मण्डन करना।

१२. वादी-प्रतिवादी होकर प्रीतिपूर्वक वाद अथवा लेख कर सत्य-असत्य का निर्णय करने के लिए सब लोगों को- विशेषकर विद्वानों को प्रोत्साहित करना।

१३. हठ, दुराग्रह, ईर्ष्या, द्वेष, वाद-विवाद और विरोध को कम करना।

१४. जो-जो भलाई है, वही भलाई, और जो-जो बुराई है, वही बुराई सब को विदित कराना।

१५. सब मनुष्यों का धर्म विषयक ज्ञान बढ़ाना कि जिससे उनको सत्य-असत्य मत और कर्तव्य-अकर्तव्य कर्म सम्बन्धी विषय यथायोग्य विदित हो सके और वे सत्य और कर्तव्य-कर्म का स्वीकार और असत्य और अकर्तव्य-कर्म का परित्याग सहजता से कर सके।

१६. सब मनुष्यों को सब के मत-विषयक पुस्तकों को देखने-समझने के पश्चात् कुछ सम्मति अथवा असम्मति देने या लिखने के लिए प्रोत्साहित करना।

१७. सर्व सत्य का प्रचार कर सब को ऐक्य मत में कराकर, द्वेष छुड़ाकर, परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त कराकर सुख-लाभ पहुँचाना।

१८. वेदादि सत्य शास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वर आदि पदार्थों के सत्य स्वरूप को सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करना।

१९. जिनके पालन से सब लोग सहजता से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, ऐसे-ऐसे सत्य सिद्धान्तों को सरल-सुगम भाषा में प्रस्तुत करना।

२०. एकेश्वरवाद, ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरुकुलीय शिक्षा व्यवस्था, गुण-कर्म-स्वभाव आधारित वर्णव्यवस्था, वैदिक-आश्रम व्यवस्था, राजधर्म, ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना पूर्वक योगाभ्यास, आचार-विज्ञान इत्यादि का संक्षेप में प्रतिपादन कर संसार का उपकार करना उनका प्रयोजन था और वे चाहते थे कि सत्यार्थप्रकाश के पाठक इन प्रयोजनों की सिद्धि में सर्वात्मना सहयोग करें।

सत्यार्थप्रकाश लिखने के ये सब प्रयोजन हैं।

समर्पण एवं सतत पुरुषार्थ से ही आर्य समाज सत्यार्थप्रकाश के इन प्रयोजनों को साकार-सिद्ध कर सकता है। ❑❑

---

पृष्ठ २ का शेष

हिम्मत से लो काम, सफलता तुम पाओगे।
देश भक्त बलवान, वीर तुम कहलाओगे।।

बात काम की अब सुनो ! यदि चाहो कल्याण।
देश करो मजबूत तुम, विक्रमादित्य समान।।
विक्रमादित्य समान, बनो योद्धा नर बंका।
निर्भय हो, दो बजा, विजय का जग में डंका।।
पाओगे सम्मान, झुकेगी दुनियां सारी।
गाएंगे यश गान, जगत के सब नर-नारी।।

# वेद विचार जगत् में

आर्य कुमारो! मिलजुल करके, आगे कदम बढ़ाओ।
करो वेद-प्रचार जगत में, सोया जगत जगाओ।।

जगत गुरु ऋषि दयानन्दद थे, ईश्वर-भक्त निराले।
वेदों के विद्वान् धुरन्धर, देश-भक्त मतवाले।।
स्पष्टवादी वीर साहसी, बड़े तपस्वी त्यागी।
निर्बल, निर्धन के रक्षक, मानवता के अनुरागी।।

स्वामी जी से धीर वीर बन, जग को स्वर्ग बनाओ।
करो वेद-प्रचार जगत में, सोया जगत जगाओ।।

सकल जगत में पाखण्डी, फिरते हैं शोर मचाते।
वेद-विरोधी पोंगा-पंथी, दुनियाँ को बहकाते।।
चरित्रहीन बदमाश लफंगे, धर्म-गुरु कहलाते।
ईश्वर-पूजा छुड़वा दी, खुद को भगवान बताते।।

पोल खोल दो मुस्टंडों की, लेखराम बन जाओ।
करो वेद-प्रचार जगत में, सोया जगत जगाओ।।

आसाराम, मुरारी की, चल रही दुकान यहाँ पर।
घूम रहा सतपाल बना, अब बेईमान यहाँ पर।।
ब्रह्मकुमारी, सांई दास, झूठा प्रचार रहे कर।
वैदिक पथ को त्याग दिया, ईश्वर का नहीं रहा डर।।

लूट रहे भोली जनता को, पोपों के गढ़ ढाओ।
करो वेद-प्रचार जगत में, सोया जगत जगाओ।।

अगर न दोगे ध्यान आयो! पीछे पछताओगे।
दुनियां में नासमझ साथियों! निश्चित कहलाओगे।।
स्वामी श्रद्धानन्द बनो तुम, शुद्धि चक्र चलाओ।
बनो दर्शनानन्द, विश्व में, ओ३म् ध्वजा लहराओ।

कहने का अब समय नहीं है, करके काम दिखाओ।
करो वेद-प्रचार जगत में, सोया जगत जगाओ।।

युवक-युवतियाँ बिगड़ गए, फैशन के हैं दीवाने।
वैदिक पथ को त्याग दिया, गाते हैं गन्दे गाने।।
अण्डे माँस लगे खाने, करते हैं पाप रात-दिन।
गाँजा, सुल्पा, मदिरा पी, पाते संताप रात-दिन।।

"नन्दलाल" नादानों को अब, वैदिक पाठ पढ़ाओ।
करो वेद-प्रचार जगत में, सोया जगत जगाओ।।

□□

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/०८/२०१६
भार- ४० ग्राम

अगस्त 2016

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2015-17

# पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

— दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

**सत्यार्थ प्रकाश**

सत्य के प्रचारार्थ

| | | | |
|---|---|---|---|
| ● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16 | मुद्रित मूल्य 50 रु. | प्रचारार्थ 30 रु. | प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं |
| ● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16 | मुद्रित मूल्य 80 रु. | प्रचारार्थ 50 रु. | |
| ● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8 | मुद्रित मूल्य 150 रु. | | प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन |

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में........................
ग्राम........................
डा0........................
जिला........................



मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।